ॐ

कठोपनिषद्

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
साहित्य-वाचस्पति, गीतालंकार, अध्यक्ष- स्वाध्याय-मंडल

स्वाध्याय-मंडल, पारडी

ॐ

कठ उपनिषद्

उपनिषद्के नाम

यह कठ उपनिषद्-कृष्ण यजुर्वेद तैत्तिरीय शाखान्तर्गत है। कठोपनिषद्का दूसरा नाम 'नचिकेतोपाख्यान' अथवा 'नाचिकेतस उपाख्यान' ऐसा भी है। सायताचार्य अपने ऋग्वेद-भाष्यमें मण्डल १० सूक्त १३५ की व्याख्यामें इस नाचिकेतोपाख्यानका बीज देखते हैं। उन्होंने इस सूक्तके सातों मन्त्रोंमें यही कथा बतानेका यत्न किया है। मूल सूक्तमें 'यम, यम सादन, कुमार, पिता' इतने ही पद हैं, जिनपर यह रचना की गयी है। पाठक यह भाष्य देखें। इस पुस्तकमें इस सूक्तके प्रथम मंत्रका नमूनेके लिये सायनानुसारी अर्थ दिया है।

गोतम उद्दालक

उद्दालक, वाजश्रवा, गोतम ये एक ऋषिके नाम हैं। ये नाम इस उपनिषद्में आ गये हैं। **गोतम** गोत्रमें उत्पन्न होनेके कारण **गौतम** नाम है। **वाजश्रवा** नाम अन्नदान करनेसे मिला और **उद्दालक** यह इसका नाम होगा। इसी कारण '**औद्दालकिः आरुणिः**' ऐसा नाचिकेताके लिये इसी उपनिषद्में कहा है।

उद्दालकने "**सर्वमेध**" तथा **विश्वजित्** यज्ञ किये। सर्वमेधमें अपने सर्वस्वका दान किया जाता है, इसलिये इसने अपना सब धन समर्पण करके इस यज्ञको किया।

❀

इस उद्दालकका पुत्र नचिकेता नामका था । वह कुमार ही था, तथापि वह श्रद्धालु तथा बुद्धिमान था । उसने देखा कि अपने पिताजी सर्वस्व अर्पण कर रहे हैं, तो मेरा भी दान किसीको वे करेंगे ही । ऐसा समझ कर उसने अपने पितासे दो तीनवार पूछा कि ' मुझे किसको दोगे ' । अनेकवार पूछनेसे पिता क्रोधित हुए और उसने कहा ' मैं तुझे यमको दूंगा ' ।

कठोपनिषद्के अनुसार यह वृत्तान्त ऐसा है कि पिता सर्वस्वका दान कर रहे थे, सब धन तथा सब गौवें आदि दे चुकनेपर वृद्ध और दुग्धहीन गौओंका भी दान वे करने लगे । यह देखकर नाचिकेताके मनमें ऐसा विचार आया कि ऐसी निकम्मी गौवें दानमें देनेसे पिताको पाप लगेगा । यज्ञ योग्य रीतिसे न होकर यह तो पापका कर्म हो रहा है । ऐसा विचार मनमें आनेसे नाचिकेताने पितासे पूछा कि ' मुझे किसको दोगे ' । दो तीन वार ऐसा प्रश्न करनेसे पिता क्रुद्ध हुए और बोले कि ' मैं तुझे मृत्युको दूंगा ' ।

महाभारतकी कथा

महाभारतमें यही कथा आती है, जो इस पुस्तकमें अन्तमें दी है, इसका तात्पर्य ऐसा है कि, उद्दालक ऋषि नदीपर स्नानके लिये गये थे । वहां ' दर्भ, फूल, पात्र ' आदि रखकर आश्रममें आये । आश्रममें पहुंचने पर अपने पुत्र नाचिकेतासे वे बोलेकी ' पुत्र! नदीपर जाकर मेरी वहां रखी हुई ' फूल, दर्भ ' आदि सामग्री ले आ ।' नचिकेता गया, उसने नदीतीरपर इधरउधर देखा, पर वहां सामग्री नहीं थी । वह जलके प्रवाहसे बह गई थी । पुत्र आश्रममें वापस आया और पिताजीसे उसने कहा कि वहां सामग्री नहीं है, वह नदीजलके वेगसे बह गई होगी । पिताने क्रोधित होकर शाप दिया कि 'तू मर जा' वैसा ही बना ! नाचिकेता एकदम मूर्छित होकर भूमिपर गिर पडा । अपने पुत्रको मरा देखकर उसका पिता शोक करने और उसपर आंसू बहाने लगा । वह ऐसा पूरा एक दिन शोक कर रहा था । इतनेमें नाचिकेता जाग उठा और उसने कहा कि यमराजका दर्शन हुआ और उसने ये वर दिये । बडा ज्ञानका उपदेश किया, सब पुण्यलोकोंका दर्शन कराया और मुझे दिव्य बना दिया । यह सुनकर सबको आनंद हुआ । यह कथा इस पुस्तकके अन्तमें दी है ।

तैत्तिरीय ब्राह्मणकी कथा

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें भी यह कथा आती है। करीब करीब कठोपनिषद् जैसा ही प्रारंभ है। पर पिताके क्रोधित होनेके बादका वृत्तांत भिन्न है। 'तुझे मृत्युको देता हूं' ऐसा पिताके कहनेपर वहां गुप्त रीतिसे आकाशवाणी हुई। और उस वाणीके द्वारा नचिकेताको समझाया कि 'तुम घबरा मत, यमके घर जा, वहां ३ रात्रितक रह, और वहां भोजन न करता हुआ भूखा ही रह। यमके पूछनेपर उत्तर दे कि 'मैंने प्रथम दिन तेरे पुत्रोंको खाया, दूसरे दिन तेरे पशुओंको खाया, और तीसरे दिन तेरे सुकृतको खाया।' इससे यम घबरायेगा और तेरा भला करेगा। नाचिकेताने वैसा ही किया, इसमें यम घबराया और उसने तीन वर नाचिकेताको दिये, जिससे वह ज्ञानी बना। यहां यमको घबरा देनेका उपदेश पहिलेसे ही नाचिकेताको किया गया है।

इस तरह यह नाचिकेतोपाख्यान जैसा कठोपनिषद्में है वैसा ही महाभारतमें, और तैत्तिरीय ब्राह्मणमें है। पर इन तीनोंकी कथाओंमें भिन्नता है। इसलिये हम कह सकते हैं कि यह कथा काल्पनिक है और कुछ विशेष तत्त्वज्ञान देनेके लिये रूपक अलंकारसे बनायी गयी है। तैत्तिरीय ब्राह्मणकी कथामें अग्नि उपासना विस्तारसे कही है वही कठोपनिषद्में संक्षेपसे कही है, पर तै० ब्राह्मणमें जो आकाशवाणीसे उपदेश दिया है और यमके सामने भी डटकर बोलनेका धैर्य बताया है वह वैसा अन्यत्र नहीं है। महाभारतकी कथा तो सबसे भिन्न ही है। वह केवल मूर्च्छा ही है और मूर्च्छामें नचिकेताको यमका साक्षात्कार और उपदेश हुआ है।

अतिथि-सत्कार

यहां अतिथि सत्कारका महत्त्व दर्शाया है। यम तो सबके प्राण हरण करने-वाला महा सामर्थ्यवान् देव है, पर अपने घर एक अतिथि आकर तीनदिन भूखा रहा, यह जानकर वह यम भी घबराता है और मुझे पाप लगेगा ऐसा मानकर भयभीत होता है और अतिथिको संतुष्ट करनेके लिये अपनेसे हो

सकता है उतना यत्न करता है। गृहस्थीके घर अतिथिका सत्कार अवश्य होना चाहिये, अतिथिको किसी तरह कष्ट नहीं होना चाहिये, यह उपदेश यहां है। आदर्श गृहस्थ धर्मका यह उत्तम चित्र है । यहां प्रत्यक्ष मृत्यु भी अतिथिसे घबराता है और अतिथिको प्रसन्न करनेका यत्न करता है। जहां अतिथिके सामने यम भी डरता है वहां दूसरे गृहस्थियोंको अवश्य ही घबराना चाहिये और अतिथिको आराम पहुंचाना चाहिये। यह इस कथाका तात्पर्य है।

राष्ट्रकी सुसम्पन्नताका समय

जिस समय हमारे देशमें किसी तरहकी धनधान्यमें न्यूनता नहीं थी, सब खानपानकी वस्तुओंकी पर्याप्त विपुलता थी, उस समय अतिथि–सत्कारके लिये गृहस्थीका ऐसा दौडना ठीक ही है। पर जिस समय खानेपीने पहरनेकी वस्तुओं-का दुर्भिक्ष्य हुआ है, ऐसे कठोर समयमें ऐसा आतिथि-सत्कार करना पडे, और ऐसे अतिथि घरमें भूखे रहेंगे और गृहस्थिको घबराते रहेंगे, तो वह एक आपत्ति ही होगी। अतिथि-सत्कारका महत्त्व जानकर भी सत्कारके लिये देशकाल परिस्थिति की मर्यादा है यह भूलना उचित नहीं है।

भारतवर्षका इतिहास देखा जाय, तो भारतवर्षने विदेशियोंको आतिथि-सत्कारसे सन्मानित किया और वे ही भारतीयोंके सिरपर चढकर बैठे ऐसा दीखता है। वास्को-डी-गामा दक्षिणमें आया, अपनी सुरक्षाके लिये वहांके राजाके भाईको अपने जहाजपर रखनेके लिये उसने मांगा । राजाने इस अतिथिका अपमान न हो इसलिये अपने भाईको जहाजपर भेजा । पश्चात् वास्को–डी–गामा यह पोर्तुगीझ प्रवासी जहाजसे उतरा, उसने जो व्यवहार करना था वह किया और धन भी कमाया, और वापस जानेके समय राजाके भाईको वापस न देते हुए अपने जहाजमें जबरदस्ती रखकर अपने देश लेगया और वहां उसको जबरदस्ती ही ईसाई बना दिया ! और अतिथि-सत्कार करनेवाला भारती राजा रोता पीटता अपने घरमें रहा !! ऐसे राक्षसोंके लिये किया हुआ अतिथि-सत्कार इस तरह भारतीयोंका नाश करनेवाला सिद्ध हुआ है।

अतिथि आया तो उसका सत्कार अवश्य करना चाहिये, पर आतिथि सज्जन है या दुर्जन इसकी परीक्षा भी करनी चाहिये। यह आत्मरक्षाका भाव भी गृहस्थीमें चाहिये। यह आत्मरक्षाका भाव न रहा, तो परिणाम ठीक नहीं होगा। तैतिरीय ब्राह्मणके अनुसार नाचिकेता यमके घर जाता है, वह तैयार होकर यमको घबरानेकी आयोजना साथ लेकर जाता है। और वहां जाकर जैसा पढाया गया वैसा करता है। इसमें गृहस्थीको घबरानेका योजनापूर्वक प्रयत्न दीखता है। जो अतिथि पहिलेसे ही इस तरह तैयारी करके आजाय, उससे गृहस्थीको अपना बचाव करनेका यत्न करना चाहिये।

वराह पुराणमें भी यह कथा (अ० १७०-१७६) है।

अथर्ववेद काण्ड ९ सूक्त ६ में अतिथि-सत्कारका विषय है और इसमें इस कथाका जैसा संकेत दीखता है वैसा देखिये-

इष्टं च वा एष पूर्तं च " ॥ १ ॥ प्रजां च वा एष पशूँश्च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथेरश्नाति ॥ ४ ॥ अशितवत्यतिथावश्नीयात्० ॥ ८ ॥ (अथर्व ९ । ६)

' जो गृहस्थी अतिथिके पूर्व भोजन करता है और अतिथिको भूखा रखता है, वह अपने इष्ट और पूर्त यज्ञ प्रजा और पशु ही खाता है । इसलिये अतिथिको पहिले खिलाना चाहिये । ' तैत्तिरीय ब्राह्मणके पद और ये पद इसमें किंचित् सा साम्य है। अथर्ववेदके इस सूक्तमें कहा है कि अतिथिसत्कारमें दिया जल भी बडे यज्ञको यथासांग करनेके समान लाभकारी होता है। यह संपूर्ण सूक्त ही अतिथिसत्कारका सूक्त है। पाठक इसको अवश्य देखें।

अथर्ववेदके १५ वे काण्डमें व्रात्यका वर्णन है। व्रत धारण करके व्रती होकर धर्मका आचरण करनेवाला व्रात्य कहा जाता है। ऐसा विद्वान अतिथि घरपर आजाय, तो उसका उत्तम सत्कार करना चाहिये ऐसा इस सूक्तमें कहा है। जिस किसीके घर ऐसा अतिथि एक रात्री भी रहेगा और उसका सत्कार वह गृहस्थी यदि करेगा तो वह पुण्य लोकोंको प्राप्त करेगा ऐसा यहां (अथर्व. कां. १५।१३।१-८)

कहा है । इस तरह वेदमें अतिथि-सत्कार करनेका उपदेश है जो गृहस्थियोंको अवश्य ध्यानमें धारण करना चाहिये ।

यह कठोपनिषद् अतिथि सत्कारसे ही प्रारंभ होता है। उद्दालक पिता अपना सर्वस्व यज्ञमें दे डालता है । उसका पुत्र यमके घर जाता है, वहां तीन रात्री भूखा रहता है, वह गृहस्थी यम भी अतिथि अपने घर भूखा रहा यह देखकर घबराता है, यह भी अतिथिका सत्कार करनेका उत्साह बढानेके लिये ही कही कथा है ।

यम और मृत्यु

मृत्युके अथवा यमके पास कुमार नाचिकेता गया था यह भाव सब कथाओंमें है । यम अथवा मृत्यु कोई मनुष्य अथवा राज्याधिकारी मानव नहीं है कि जिसका घर हो, कुटुंब और परिवार हो । उसके घरमें अतिथि आते और रहते हों यह संभावना नहीं है । आयुष्य समाप्तिका नाम मृत्यु है । आयुष्य समाप्ति कोई मानव नहीं है, नहीं वह देव देहधारी हो सकता है । यमको ' वैवस्वत ' कहते हैं, अर्थात् यह विवस्वान् सूर्यसे बना हुआ है । सूर्यसे ' **काल** ' बनता है और यम या मृत्युको भी ' **काल** ' कहते हैं । काल भी कोई देहधारी व्यक्ति नहीं है कि जिसके घर अतिथि आकर रह सकते हैं । इसलिये सच्चा मृत्युदेव वह नहीं है कि जिसके घर नचिकेता गया हो और जिसने नाचिकेताको उपदेश दिया हो । अतः यह कथा इतिहास नहीं अपि तु रूपक अलंकारकी दीखती है ।

मृत्यु करनेवाली देवता विग्रहवती नहीं है कि जो किसीसे बातचीत कर सके । परमेश्वरके तीन कार्य हैं, निर्माण करना, सुरक्षा करना और नाश करना । नाश करनेका ही नाम मृत्यु है । परमात्मा आत्मतत्त्व दृष्टिसे निराकार और अव्यक्त है और विश्वरूपकी दृष्टिसे विश्वरूप है । वह कैसा भी माना जाय तो भी उसके यहां अतिथिका जाना, उसके घर अतिथिका तीन दिन भूखा रहना, इससे मृत्यु की घबराहट होना आदि बातें संभव नहीं हैं । इसलिये मृत्युदेवताके घर नाचिकेताका जाना एक काल्पनिक ही प्रसंग है ।

परमात्मा सबका मृत्यु है । या तो उसके विश्वरूप घरमें सभी प्राणी हैं अथवा उसका घर ही नहीं है । अर्थात् परमात्माके घर नाचिकेता गया था ऐसा मानना असंभव है ।

गुरुही मृत्यु है

वेदमें एक और वर्णन है । गुरुकुलमें कुमार जाता है, उस समय वह मृत्युको समर्पित होता है । प्रथम जन्मदाता मातापितासे उसका संबंध छूट जाता है और उसका गुरु पिता होता है और सावित्री अथवा विद्या देवता उसकी माता होती है । यही उसका द्वितीय जन्म है। इस कारण गुरुकुलसे आये विद्वानको द्विजन्मा बोलते हैं । उसके दो जन्म होते हैं । प्रथम जन्मकी मृत्यु होकर उसका विद्यासे दूसरा दिव्य जन्म उसको मिलता है । अतः कहा है—

आचार्यो मृत्युः । (अथर्व. ११ । ५ । १४)

कई ग्रंथोंमें भी ' **मृत्युराचार्यस्तव** ' ऐसा ब्रह्मचारीको संबोधन करके कहा है । आचार्यके पास ब्रह्मचारी जाता है उस समय उसका प्रथम जन्म समाप्त होता है और दूसरा जन्म लेनेके लिये वह सरस्वती या विद्यामाताके गर्भमें प्रविष्ट होता है और ब्रह्मचर्य समाप्तिके समय समावर्तन संस्कारके समय नया जन्म लेता है । इस तरह आचार्य मृत्यु है । अथर्ववेदमें एक स्थानपर इसी हेतुसे कहा है—

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन्
भूतात् पुरुषं यमाय ॥ (अथर्व ६ । १३३ । ६)

' मैं मृत्युको समापत हुआ ब्रह्मचारी हूं । मैं इस यमके लिये अर्थात् आचार्यके लिये और एक ब्रह्मचारी लाता हूं, यह ब्रह्मचारीका वचन है । यहां ब्रह्मचारी मृत्युको समर्पित हुआ होता है यह भाव है । इससे अनुमान हो सकता है कि नाचिकेता गुरु-आचार्य-रूपी मृत्युके पास गया और उनको उससे यह विद्या प्राप्त हुई । तीन रात्री यमके घर भूखा रहनेका उल्लेख भी अथर्वमंत्रसे स्पष्ट हो जाता है—

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः॥
(अथर्व. ११।५।३)

‘ आचार्य ब्रह्मचारीका उपनयन करता है, उस समय ब्रह्मचारीको विद्यामाताके गर्भमें रखता है, वह ‘ **तीन रात्रीतक** ’ उस ब्रह्मचारीको उदरमें धारण करता है, जब वह बाहर प्रकट होता हैं, उस समय उसको सब देव देखनेके लिये इकट्ठे होते हैं। ’

यहां आचार्यके घर तीन रात्री रहनेका उल्लेख है। आत्मिक, भौतिक और दैविक ये तीन अज्ञान ही ये तीन रात्रियां हैं और यहां ज्ञानकी भूख ब्रह्मचारीको होती है। इसलिये कहा है कि आचार्यजीके घर वह ‘ **तीन रात्रीतक भूखा रहता है** । ’ इस तरह अथर्वमंत्रोंके साथ इसका सबध देखनेसे अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। और यमके घर नाचिकेता गया कैसा और वापस आया कैसा यह शंका नहीं रहती। हमारे विचारसे नाचिकेता सुयोग्य आचार्यके पास गया और वहां उसने यह विद्या प्राप्त की।

परंतु ऐसा माननेके लिये इस कठ उपानिषद्के वचन सहायता नहीं करते, क्योंकि इस उपनिषद्के वचन ऐसे हैं कि जिनसे नाचिकेता यम-मृत्यु-के पास गया था ऐसा ही सिद्ध होता है। जो हो, हमने वेदके वचन यहां उद्धृत किये हैं। पाठक इनका विचार करें और सत्यकी खोज करें।

नाचिकेता-यम संवाद काल्पानिक हो वा सत्य हो। इससे उपनिषत्प्रतिपादित सत्यसिद्धान्तोंकी सत्यतामें किसी तरह बाधा उत्पन्न नहीं होती। इसलिये इस उपनिषद्का प्रामाण्य अबाधित है इसमें कोई संदेह नहीं है।

कठ उपनिषद्का उपदेश

कठ उपनिषद्का संक्षेपसे आशय यह है--

पुत्रका कर्तव्य

प्रथम अध्याय—

१ प्रथम वल्ली— [इस वल्लीमें 'पुत्रधर्म' बताया है।] पुत्र पिताको (शान्त-संकल्पः) शान्त और प्रसन्नचित्त रखे, (सुमनाः) उत्तम मनसे आनन्दयुक्त रखनेका यत्न करे, तथा (वीत-मन्युः) उसका क्रोध दूर करे और (प्रतीतः) उत्तम व्यवहार करनेकी अनुकूलता उसके लिये उत्पन्न करे तथा (सुखं रात्रीः शयिता) रात्रीमें पिताको उत्तम नींद आये ऐसी सुव्यवस्था पिताके लिये पुत्र करे। + (कठ १।१।१०-११)

स्वर्गधामका सुख

स्वर्ग लोकमें निर्भयता होती है, बुढापा, रोगभय, जरावस्था, अपमृत्यु नहीं होते, खानपानके कष्ट नहीं होते, शोक या दुःख नहीं रहता और वहां आनन्दसे विचरते हैं। (कठ. १।१।१२-१३)

स्वर्गलोकमें उत्तम व्यवस्था होती है। पृथीपर भी स्वर्ग जैसी उत्तम व्यवस्था होनी चाहिये। स्वर्गमें क्या रहता है यह इसीलिये बताते हैं—

स्वर्गधाम पृथ्वीपर लाना

१ (स्वर्गे लोके किंचन भयं नास्ति) वहां किसीको कुछ भी भय किसी अन्य व्यक्तिसे नहीं होता। सब व्यक्ति पूर्ण निर्भय होकर अपना

+ यहां मातापिता आदिकोंके विषयमें पुत्रका कर्तव्य क्या है यह बताया है। गृहस्थीका घर कैसा होना चाहिये यह आदर्श यहां है। जिस घरमें ऐसे पुत्र हों वही आदर्श गृहस्थाश्रम है। पुत्र-पुत्रियोंकी सुशिक्षा ऐसी होनी चाहिये। इससे गृहस्थाश्रम सुखपूर्ण होता है।

अपना व्यवहार आनन्द प्रसन्न रहकर करते रहते हैं, कोई किसीके मार्गमें विघ्न नहीं उत्पन्न करता, नाही किसीको कोई दुःख देता है। वहां पूर्ण निर्भयता रहती है। २ (न तत्र मृत्युः न जरा) वहां अपमृत्यु और वृद्धावस्था नहीं होती है। ऐसे ही यहां राज्यप्रबंधद्वारा आरोग्य बढाकर प्रजा वृद्ध आयुमें भी पूर्ण ओजस्वी रहे, रोगोंका भय न हो और अकाल मृत्यु न हों ऐसा प्रबंध करना चाहिये। राज्यव्यवस्थासे आरोग्य बढानेसे यह यहां हो सकता है। ३ (अशनायापिपासे तीर्त्वा) भूख और प्याससे किसीको कष्ट न हो ऐसा प्रबंध यहां राज्यव्यवस्थासे करना योग्य है। कोई मनुष्य अपने पास अधिक संग्रह न कर सके और दूसरोंको भूख और प्याससे दुःखी न कर सके ऐसा प्रबंध करना चाहिये। खानेके लिये योग्य व निर्दोष अन्न, पीनेके लिये उत्तम जल अथवा रस, ओढनेके लिये वस्त्र, रहनेके लिये उत्तम घर, रोगोंकी निवृत्तिके साधन, यह सब राज्य-प्रबंधसे हो। ४ (शोकातिगः मोदते) किसी प्रकारका शोक किसीको न हो और सब आनन्द प्रसन्न रहें ऐसा प्रबंध राज्यमें होना चाहिये। यही भूमीपर स्वर्ग लाना है। ज्ञानी प्रबंधकर्ता ऐसा करें इसी लिये यह ध्येय मानवोंके सामने रखा है। (१) निर्भयता, (२) रोगोंका उच्चाटन, (३) अप-मृत्युको दूर करना, (४) खानपानकी सुव्यवस्था और (५) प्रसन्नता लोगोंको मिले।

स्वर्गधामका प्रबंध करनेकी यह शक्ति बुद्धिमें रहती है। बुद्धिमें ही इस शक्तिको बढाना चाहिये। इस बुद्धिमें स्थित ज्ञानाग्निको बढानेकी रीति यह है—

स्वर्गधाम कैसा बनता है?

१ (त्रि- नाचिकेतः) तीनों शास्त्रोंके अध्ययनसे इस ज्ञानाग्निको सचेत करना, तत्त्वज्ञान, भूतज्ञान तथा अनुभवज्ञानके ग्रन्थोंको पढनेसे इस ज्ञानाग्निको प्रज्वलित किया जा सकता है। २ (त्रिभिः संधिं एत्य) माता, पिता और आचार्य इन तीनोंसे मनुष्य संस्कारसंपन्न होता है, यह

इस तरह संपन्न बनकर, ३ (त्रिकर्मकृत्) वैयक्तिक, सामाजिक और जागतिक कर्तव्य करके सब दुःखों और कष्टोंको दूर किया जा सकता है और सब ४ (शान्ति अत्यन्तं एति) शान्तिको प्राप्त कर सकते हैं। (शोकातिगः मोदते) शोक दूर करके आनन्दप्रसन्न रहता है।

यह है स्वर्गकी अवस्था। जिस राज्यशासनमें ज्ञान बढानेका ऐसा सुप्रबंध हो, जहां सब लोग इस तरह अपने अपने प्रबंध करते हों वहां सबको स्वर्गीय सुख मिल सकता है इसमें संदेह ही क्या है? यहां ऐसा कहा है कि राष्ट्रकी शिक्षा-विद्यादानका प्रबंध उत्तम हो, कुटुंब-व्यवस्था स्थिर रहे, अध्यापनका प्रबंध निर्विघ्न होता रहे, सब अपने कर्तव्य उत्तम रीतिसे करें, कोई किसीकी उन्नतिमें विघ्न न डाले तो यह सुख इस पृथ्वीपर मिल सकता है। (कठ १।१।१४-१९)

ज्ञानप्राप्तिके मार्गमें विघ्न करनेवाले भोग हैं। जो भोगोंमें फंसता है वह ज्ञानके पीछे जा नहीं सकता। ज्ञानसे ही सब उन्नतिका माग खुला होता है इसलिये मनुष्य भोगोंमें न फंसे और ज्ञान जितना मिल सकता है उतना प्राप्त करे। (कठ १।१।२०-२९)

२ द्वितीया वल्ली— मनुष्यके पास सच्चा कल्याण करनेवाले और क्षणिक सुख देनेवाले पदार्थ आते हैं। इनमेंसे सच्चा कल्याण करनेवाले पदार्थोंको स्वीकार करना चाहिये और क्षणिक सुख देनेवालोंको दूर करना चाहिये। तब उस मनुष्यका कल्याण होगा। नहीं तो साधारण मनुष्य इसका विचार नहीं करता और भोगोंमें फंसता जाता है और अन्तमें घोर विपत्तिमें पडता है। (कठ १।२।१-६)

सबकी प्रवृत्ति भोगोंको प्राप्त करनेकी ओर होती है। इसलिये विरला ही कोई आत्मज्ञानको सुननेवाला मिलता है। बहुत सुनते हैं, पर उनको भी आत्मज्ञान ठीक तरह नहीं होता। इसका योग्य उपदेशक और योग्य श्रोता दोनों विरला ही हैं। योग्य गुरुके पाससे ही यह आत्मज्ञान योग्य रीतिसे प्राप्त करना चाहिये। मनुष्यका हित इसीमें है। (७-९)

बुद्धिमें स्थित पुराण पुरुषको—अर्थात् आत्माको—अध्यात्म योगसे जान-कर मनुष्य हर्ष शोकोंको दूर करता और सदा अखंड आनंदमें रहता है। (१०–१२)

वेदोंमें जिसका वर्णन है, व्रत और तप जिसकी प्राप्तिके लिये करते हैं वह ओंकार वाच्य सर्व श्रेष्ठ आत्मतत्त्व ही है। ध्यानके लिये यही श्रेष्ठ आलंबन है। यह आत्मा अजन्मा नित्य शाश्वत और पुराण पुरुष है। सब शरीरोंमें यह एक आत्मा रहता है पर शरीरके मरनेसे इसका कुछ भी बिगडता नहीं। (१३–१८)

यह आत्मा सूक्ष्मसे सूक्ष्म और बडेसे बडा है। यह अन्दर और बाहर सर्वत्र है। निष्काम कर्मयोगी इस आत्माके महिमाको जानता है। यह अनेक शरीरोंमें एक है, यही महान् और विभु है इसको जाननेसे शोक दूर होता है। यह सब विश्वका भोक्ता है और सब विश्व इसका अन्न है। ऐसा यह आत्मा सबको जाननेयोग्य है।

३ तीसरी वल्ली— ज्ञानी लोग जीवात्मा–परमात्माको छाया–धूप कहते हैं। सत्यज्ञानसे ही इसका ज्ञान ठीक तरह होता है।

साधकको उचित है कि वह अपने आपको रथमें बैठनेवाला और अपने शरीरको अपना रथ समझे, बुद्धिको सारथि और मनको लगाम माने। इन्द्रियाँ इस रथको जोते घोडे हैं जिनके मार्ग विषयोंमेंसे गुजरते हैं। आत्मा इंद्रिय और मन मिलकर भोक्ता होता है। इस रथकी उपमासे सब कुछ साधनमार्ग जाना जा सकता है। अर्थात् शरीर, इंद्रिया, मन और बुद्धि ज्ञान विज्ञानसंपन्न रही तो ही मनुष्यका कल्याण होगा, अन्यथा इसको दुःख भोगना पडेगा। यदि रथके घोडे अशिक्षित हैं, लगाम टूटे हैं, सारथी पागल है तो वह रथ इष्ट स्थानपर नहीं पहुंचेगा। पर जिस रथके घोडे शिक्षित हैं, सारथी चतुर है, लगाम ठीक हैं, तो वह रथ योग्य मार्गसे जायगा और रथीको सुख मिलेगा। इसलिये शरीर इन्द्रियाँ–मन–बुद्धि– को ज्ञानविज्ञानसे संस्कारसंपन्न करना चाहिये। (कठ १।३।१–९)

इन्द्रियोंसे अर्थ, अर्थोंसे मन, मनसे बुद्धि, बुद्धिसे सत्त्व, वहत्तत्त्वसे अव्यक्त प्रकृति, प्रकृतिसे पुरुष अर्थात् आत्मा श्रेष्ठ सामर्थ्यवान् है। अतः श्रेष्ठसे नीचेवालेका संयम करना चाहिये। इंद्रियोंका संयम मनसे, मनका बुद्धिसे करना चाहिये। (१०-१२)

द्वितीय अध्याय—

प्रथमा वल्ली— परमेश्वरने इंद्रियोंको बहिर्मुख बनाया है, इस कारण मनुष्य बाह्य विषयोंको तो देखता है, परंतु अन्तरात्माको नहीं देख सकता। क्वचित कोई बुद्धिमान पुरुष अमृतत्व चाहता हुआ अन्तरात्माका दर्शन करता है। मूढ मानव विषयभोगोंके पीछे पडते हैं और वे मृत्युके पाशसे जकडे जाते हैं। केवल बुद्धिमान पुरुष ही अमृतरूप आत्माको जानकर अस्थायी विषयोंके पीछे नहीं लगता। जिसकी शक्तिसे शब्दादि विषयोंका तथा अन्य सब अवशिष्टतत्त्वका भी ज्ञान मनुष्य करता है वही आत्मा है। (२।१ १-३)

जाग्रति और निद्राका अनुभव तो करता है। वह महान विभु आत्मा है, इसको जाननेसे बुद्धिमान पुरुष शोकसे मुक्त होता है। यही भूत-वर्तमान-भविष्यका स्वामी है और यही मीठा फल खाता है। इसको समीपसे जानना चाहिये। यह बुद्धिमें प्रविष्ट होकर इन्द्रियोंके साथ यहां रहता है। यही वह आत्मा है। (२।१।४-६)

प्राण और इंद्रियोंके साथ एक दैवी शक्तिवाली आत्मदेवता बुद्धिमें रहती है। जैसा लकडियोंमें अग्नि रहता है वैसी यह शक्ति सर्वत्र रहती है, गर्भवती स्त्रीमें जैसा गर्भ रहता है वैसी ही यह शक्ति अन्दर होती है। इसकी उपासना जागृत मनुष्योंको करनी चाहिये। जिस अन्तर्यामी शक्तिसे सूर्यके उदय और अस्त होते हैं, उसमें सब देव आश्रित होते हैं। इसकी आज्ञाका उल्लंघन कोई कर नहीं सकता। यही वह आत्मा है। (२।१।७-९)

इस लोकमें और परलोकमें एक ही तत्त्व भरा रहा है। यह सब आत्म-तत्त्व एक ही एक है। यहां अनेक पदार्थ नहीं हैं। अकेला एक ही एक आत्मतत्त्व सर्वत्र है। मनसे मनन करके इस आत्माको जानना चाहिये और एक ही एक आत्मतत्त्व है यह भी जानना चाहिये। हृदयमें अंगुष्ठ मात्र पुरुष है जो भूत-भविष्यका स्वामी है। इसके जाननेसे ज्ञाता किसीकी निंदा नहीं करता, क्योंकि सभी इसी आत्माके भाव हैं ऐसा वह समझता है। (२।१।१०-१२)

हृदयमें जो अंगुष्ठमात्र पुरुष है वह धूमरहित प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी है। वह सबका स्वामी है। वह जैसा आज है वैसा ही वह कल भी होगा। पर्वतपर वृष्टि होती है और उससे पृथक् पृथक् नदी नाले निकलते हैं। मनुष्य उनको पृथक् नाम देता है। ऐसी ही यहांकी विभिन्नता है। वही वृष्टिजल शुद्ध जलसे भरे तालाबमें गिरता है वहां वह जलमें जल मिल जाता है और सब एक ही एक जल कहलाता है। वैसी आत्माकी एकता यहां है। (२।१।१३-१५)

द्वितिया वल्ली— अजन्मा आत्माका यह शरीररूपी नगर है, इस किलेके ग्यारह द्वार हैं। अनुष्ठान करनेवाला यहां दुःख नहीं करता; परंतु यहां अनुष्ठानद्वारा दुःखसे मुक्त होता है। यह आत्मा शुद्ध, व्यापक, सबमें रहनेवाला आदि विशेषणोंसे युक्त है। इस शरीरमें प्राण ऊपरकी ओर संचार करता है, अपान नीचेकी ओर जाता है, बीचमें जो वामन देव है वही यह सब करता है। इस देवके आश्रयसे सब ३३ देवतायें यहां रहती हैं। (२।२।१-३)

शरीर मरनेपर जो अवशिष्ट रहता है वही आत्मा है। प्राण और अपानसे कोई जीवित नहीं रहता। इससे भिन्न जो तत्त्व है उससे मनुष्य जीवित रहता है। मरनेपर इसका क्या होता है इस प्रश्नका उत्तर यह है- जैसा जिसका ज्ञान और जैसा जिसका कर्म होता है वैसी उसकी उन्नति या अवनति होती है। कई जीव दूसरा जन्म लेनेके लिये योग्य योनिमें

जाते हैं और कई स्थावर भी होते हैं। इद्रियां सोनेपर यह जागता है। यही तजस्वी अमर ब्रह्म है। इसके आश्रयसे सब कुछ रहता है। अग्नि जैसा सब विश्वमें व्यापकर विश्वका रूप धारण करके रहता है वैसा एक ही सर्वभूतोंका अन्तरात्मा विश्वरूप होकर अन्दर बाहर है। एक वायु जैसा सब भूतोंमें प्रविष्ट होकर सब भूतोंके आकारवाला होकर रहा है वैसा ही सबका अन्तरात्मा एक है। सूर्य जैसा एक है और किसीके नेत्र दोषसे वह दोषी नहीं होता, वैसा सबका एक अन्तरात्मा है, जो किसी व्यक्तिके दोषसे दोषी नहीं होता। यह सबको अपने वशमें करनेवाला अपने एक रूपको नाना रूपोंमें विभक्त कर देता है। इसको अपने अन्दर देखते हैं उनको शाश्वत सुख मिलता है। दूसरे अज्ञानियोंको सुख नहीं मिलता। (२। १। ४–१२)

तृतीय वल्ली— ऊपर मूल और नीचे शाखावाला यह एक प्रचंड अश्वत्थ वृक्ष है. यही ब्रह्म, अमृत अथवा परमात्मा है। इसीमें सब तैतीस देव रहते हैं। इसके शासनका उल्लंघन कोई कर नहीं सकता। प्राणके आधारसे यह सब विश्व चल रहा है, वही जानने योग्य है, जो इसे जानते हैं वे अमर होते हैं। इस परमात्माके भयसे अग्नि प्रकाशता है, सूर्य तपता है, इन्द्र शत्रुनाश करता है, वायु बहता है और मृत्यु मारता हुआ चारों ओर दौडता है। (२। ३। १–३)

शरीरका नाश होनेके पहिले इस आत्माका ज्ञान साधक प्राप्त करे। इससे साधकका लाभ होगा। जैसा बिंबका प्रतिबिंब शीशेमें दीखता है, जैसा जलमें प्रतिबिंब दीखता है, जैसी छाया और आतप दीखते हैं वैसे ये जीवात्मा परमात्मा हैं। इंद्रियोंके पृथक् पृथक् अनुभवोंका तथा उनके उदय और अस्तका विचार करनेसे बुद्धिमान पुरुष शोकसे मुक्त होता है क्योंकि वह जानता है कि यह सब आत्मासे ही हो रहा है (२। ३। ४-६)।

(कठ १। ३। १०-१२ में जो कहा था वही यहां २। ३। ७–८ में पुनः दुहराया है। परमात्मा सर्वव्यापक है, वह अव्यक्त है। इसके जाननेसे साधक दुःखसे मुक्त होता है। (२। ३। ७–९)

पांच ज्ञानेंद्रियां मनके साथ जब स्तब्ध होती हैं, बुद्धि जब चेष्टा नहीं करती. उस स्तब्ध अवस्थाको 'परमगति' कहते हैं। इसका ही नाम योग है। इस समय साधकको सम अवस्था प्राप्त होती है! यह प्राप्त हुई तो इसका दृढीकरण करना चाहिये, नहीं तो वह अवस्था दूर भी होती है। आत्मा चक्षु वा मनसे प्राप्त नहीं होगा, 'है' इतना ही उसका ज्ञान हो सकता है। (२। ३। १०–१२)

जब साधककी सब भोगवासनाएं हृदयसे दूर हो जाती हैं, तब वह अमर हो जाता है। वह तब ब्रह्म प्राप्त करता है। हृदयकी सब ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं तब मर्त्य अमर होता है। यह अनुशासन है। हृदयसे १०१ नाडियां निकलती हैं, उनमेंसे एक सिरकी ओर जाती है, उससे जो गुजरता है वह अमर होता है। अन्य नाडियोंसे जानेवाला अन्यगति प्राप्त करता है। जैसा मुञ्ज घासमेंसे अन्दरकी तिलकी तारको पृथक् करते हैं, उस तरह शरीरसे आत्माको पृथक् अनुभव करना चाहिये और उसको चालक जानना चाहिये। यही बल और तेज बढाने वाला अमृत है। यह ज्ञान जिसको प्राप्त होगा वह अमर होगा। (२। ३। १३–१८)

यह कठउपनिषद्का संक्षिप्त सार है। इसका विवरण आगे इस पुस्तकमें पाठक देख सकते हैं। यहां स्वर्गसुखका वर्णन है वह इसलिये दिया है कि मनुष्य अपने सुप्रबंधसे यहां पृथ्वीपर वैसा सुख प्राप्त करनेका यत्न करे। पृथ्वीपर स्वर्गधामको लाना चाहिये।

परब्रह्म परमात्माका गुणवर्णन यहां किया है, वह गुणसमुच्चय परमात्मामें है। साधक मनुष्य इसका विचार करे और वह नरका नारायण बननेका यत्न करे अर्थात् वह उन गुणोंको अपनेमें लानेका यत्न करें, तथा शासकाम वे गुण उत्कटतासे रहें। परमात्मा महान् विश्वराज्यका शासक है वह हमारा आदर्श है, हमारे राज्यके शासक उसके समान हों। जैसा बडा महाराजा है वैसा हमारा राजा बने। इस दृष्टिसे पाठक विचार करें। इस बातका स्पष्टीकरण इस पुस्तकके अन्तमें किया है।

ऋग्वेदके सायण भाष्यमें नचिकेतोपाख्यान

श्री सायणाचार्य ऋग्वेद भाष्यमें १०।१३५ में नचिकेतोपाख्यान है ऐसा मानकर भाष्य करते हैं वह ऐसा है—

(ऋषिः कुमारो यामायनः । देवता यमः । छन्दः अनुष्टुप्)

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥१॥

(यस्मिन् सुपलाशे वृक्षे) जिस उत्तम छायावाले वृक्षके नीचे बैठकर (देवैः यमः संपिबते) देवोंके साथ यम रसपान करता है। (अत्र) वहां (नः विश्पतिः पिता हम सब संतानोंका पालक अर्थात् मुझ नचिकेता जैसे पुत्रोंका पालन करनेवाला वाजश्रवा पिता गौतम (पुराणान् अनु वेनति) प्राचीन पूर्वजों-अर्थात् हमारे प्राचीन पितरोंके साथ यह नचिकेता भी जाकर बैठे ऐसी इच्छा करता है। यह नचिकेताका कथन है ऐसा सायणाचार्यका मत है। जिस वृक्षके नीचे देवों और पितरोंके साथ बैठकर यम सोमरसका पान करता है वहां अपना पुत्र नचिकेता भी जाये ऐसी इच्छा गौतम वाजश्रवा ऋषिके मनमें उत्पन्न हुई।

अस्तु। इस तरह इस सूक्तमें श्री सायणाचार्य नचिकेताका आख्यान देखते हैं।

इस सूक्तका ऋषि '**कुमारो यामायनः**' है। कुमारका अर्थ 'पुत्र' और 'यामायनः' का अर्थ यमके पास जानेकी इच्छा करनेवाला अथवा यमका पुत्र है। अथवा 'कुमार' इस नामवाला ऋषि ऐसा भी अथ होगा। इन शब्दोंमें इस आख्यानका मूल यहां देखा गया है। यदि इस सूक्तमें नचिकेतोपाख्यानका मूल होगा, तो वह अस्पष्ट होगा और महाभारत, तै० ब्राह्मण आदि स्थानमें मिलनेवाले उपाख्यानोंसे यह विभिन्न ही होगा।

पाठक संपूर्ण सूक्तके सायण भाष्यको यहां देखें और विचार करें।

यहां यह भूमिका समाप्त करते हैं और पाठकोंका चित्त इस ओर आकर्षित करते हैं कि यहांका परमात्मवर्णन अपने निज जीवनमें लानेका यत्न वे अधिकसे अधिक करें और यह ज्ञान मानवी समाजमें उतरे और सबका कल्याण हो।

"आनंदाश्रम"
पारडी जि. सूरत
१ चैत्र सं. २००७

निवेदनकर्ता
पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष— स्वाध्याय-मण्डल

कठोपनिषद्का शान्ति मन्त्र

कठोपनिषद्के साथ आदि और अन्तमें जो शान्ति मंत्र पढा जाता है वह यह है—

सुशिक्षाका ध्येय

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः। शान्तिः। शान्तिः॥

'अध्ययनसे प्राप्त हुआ ज्ञान हम दोनोंका संरक्षण करे। वह ज्ञान हम दोनोंको भोजन देता रहे। उस ज्ञानसे हम दोनों पराक्रम करते रहें। हम दोनोंका वह ज्ञान तेजस्वी रहे। और उस ज्ञानसे हम दोनों आपसमें झगडते न रहें अर्थात मिलजुलकर रहें और उन्नत होते रहें। इस ज्ञानसे व्यक्तिमें शान्ति, राष्ट्रमें शान्ति और विश्वमें शान्ति स्थापन हो।'

यहां यह कहा है कि अध्ययनसे प्राप्त ज्ञानसे (१) अपनी सुरक्षा हो, (२) भोजन मिले, (३) पराक्रम करनेकी शक्ति बढे, (४) तेजस्विता बढे, और (५) आपसमें वैर न हो तथा (६) व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्वमें शान्ति स्थापन हो। यह है सुशिक्षाका ध्येय। इस कठउपनिषदका यह साध्य है।

जगत्में ज्ञानी-अज्ञानी शिक्षित-अशिक्षित, शूर-भीरु, धनी-निर्धन, कर्म-कर्ता-अकर्मण्य, बली-निर्बल, शासक-शासित, राजा-प्रजा, ऐसी द्विविधता है। इन दोनोंकी सुरक्षितता हो, इन दोनोंकी भोजनकी समस्या दूर हो, ये दोनों पराक्रम करते रहें, इन दोनोंमें तेजस्विता बढे, इनमें आपसमें द्वेष न बढे, ये दोनों सुखसे और आनन्दसे रहें और बढें। और अन्तमें विश्वशान्ति स्थापन हो, यह इस शान्ति मन्त्रका आशय है। यह आशय बडा उत्तम है और सबका यही ध्येय होने योग्य है।

शिक्षासे राष्ट्रमें तथा विश्वमें यही सिद्ध होना चाहिये। अब कठोपनिषद्का प्रारंभ होता है—

ॐ

कठ-उपनिषद्

प्रथम अध्याय

प्रथमा वल्ली

वाजश्रवाका सर्वमेध यज्ञ

ॐ उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥

त ँ ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश,
सोऽमन्यत ॥ २ ॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः ।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥ ३ ॥

स होवाच पितरं 'तत कस्मै मां दास्यसीति'।
द्वितीयं तृतीयम् । त ँ होवाच 'मृत्यवे त्वा ददामीति' ॥ ४ ॥

(उशन्) परम सुखकी इच्छा करनेवाले वाजश्रवस ऋषिने सर्वमेध यज्ञ किया और उसमें (सर्ववेदसं ददौ) अपना सब धन दे दिया। (तस्य नचिकेता नाम पुत्र आस) उसका नचिकेता नामक एक पुत्र था (१)। (दक्षिणासु नीयमानासु) दक्षिणाएं जब ऋत्विज लोग ले जा रहे थे, उस समय (तं कुमारं सन्तं) वह उसका पुत्र छोटा बच्चा ही था उस समय उस बालकमें (श्रद्धा आविवेश) श्रद्धा उत्पन्न हुई; (सः अमन्यत) उसने सोचा (२)। कि मेरा यह पिता (पीतोदकाः) जो जल पी नहीं सकती, (जग्ध तृणाः) जो घास खा नहीं सकतीं, (दुग्ध-दोहाः) जो दूध नहीं देतीं और (निरिन्द्रियाः) जो वंध्या अर्थात् इन्द्रिय

रहित सी हो गयी हैं, (ताः ददत्) ऐसी गौओंका दान करनेवाला (सः तान् गच्छति) उन लोकोंको प्राप्त होता है जो (अनन्दाः नाम ते लोकाः) आनन्द रहित अर्थात् दुःखपूर्ण लोक हैं (३) ! (सः पितरं ह उवाच) उसने अपने पितासे पूछा कि हे (तात ! कस्मै मां दास्यसि इति) ' हे पिता ! मुझे किसको दोगे ' ? इस तरह (द्वितीयं तृतीयं) दुबारा और तिबारा कहा । तब (तं ह उवाच) उसको पिताने कुछ क्रुद्धसा हो कर कहा कि (त्वा मृत्यवे ददामि इति) ' तुझे मृत्युको दूंगा ' (४) ॥

(१–२) यहां ऋषि ' वाजश्रवा ' है । ' वाज-श्रवा ' का अर्थ अन्नदान करनेसे जिसका यश चारों ओर फैला है अर्थात् अन्नदान करनेवाला, अपने पासके अन्नका दान करके यज्ञ करनेवाला । यह ऋषि (उशन्) उन्नति, अभ्युदय, श्रेष्ठ स्थितिकी प्राप्तिकी इच्छा करता था और उस अवस्थाको प्राप्त करनेके लिये उन्होने अपने सर्वस्वका दान करके सर्वमेध यज्ञ करनेका प्रारंभ किया था । इस यज्ञसे करनेवालेकी बडी उन्नति होती है और उसे श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त होती है। परमात्माने सबसे प्रथम यह यज्ञ किया जिससे वह सबसे श्रेष्ठ बना ऐसा शतपथ ब्राह्मणमें कहा है—

ब्रह्म वै स्वयंभू तपोऽतप्यत०। अहं भूतेषु आत्मानं जुहवानि०।
तत्सर्वेषु भूतेषु आत्मानं हुत्वा भूतानि चात्मनि सर्वेषां भूतानां
श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यं आधिपत्यं पर्यैत् । तथैवैतद्यजमानः सर्वमेधे
सर्वान् मेधान् हुत्वा सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति ११
श० ब्रा० १३। ४। ३। १

' जो सर्वमेध यज्ञमें सर्वस्व अर्पण करता है वह श्रेष्ठ होता है । इस तरह मैं भी श्रेष्ठ बनूंगा ऐसी इच्छा इस वाजश्रवा ऋषिके मनमें उत्पन्न हुई । ' ' उशन् ' का अर्थ ' इस तरह उत्कर्षकी इच्छा करनेवाला ' ऐसा है । ऐसी अपने उत्कर्ष करनेकी इच्छा धारण करना प्रत्येक मनुष्यको योग्य है । इस तरह वाजश्रवा ऋषिकी इच्छामें कोई दोष नहीं था । परंतु सर्वस्वदानमें वह वद्ध, निकम्मी, बुड्ढी गौवें भी देने लगा और ऐसी निकम्मी गौओंके दानसे मेरा यह यज्ञ सांग

होगा और मेरा उत्कर्ष होगा, ऐसा वह मानने लगा था, यह उसका बडा भारी दोष था।

यज्ञसे उन्नति होती है, परंतु यज्ञमें जो समर्पण करना हो वह उत्तम होना चाहिये। तब सुफलकी प्राप्ति हो सकती है। जो भी दान देना हो वह उपयोगी, उत्तम तथा जिसको देना हो उसके उपयोगमें आनेवाला होना चाहिये।

(३) वृद्ध, घास भी चबा न सकनेवाली, दूध न देनेवाली गौवें दान देनेसे लेनेवालेका क्या भला होगा! पर यह बात वाजश्रवाके मनमें नहीं आयी और वह वृद्ध गौओंका दान देता रहा।

उसका पुत्र नचिकेता नामका वहीं था। उसके ध्यानमें यह बात आगयी और वह मनमें सोचने लगा कि यह मेरा पिता क्या कर रहा है! इससे तो उन्नति होनेके स्थानमें अवनति होगी। इससे (**अनन्दा लोकाः तान् गच्छति**) दुःखपूर्ण अवस्थाकी इसको प्राप्ति होगी। यह तो सर्वथा बुरा कर्म हो रहा है। गौ का दान करना अच्छा है, पर वह गौ सवत्स आर दूधदेनेवाली होनी चाहिये। अच्छी वस्तुका दान करना चाहिये। अतः मेरे पिताका यह दान हानिकारक है।

(४) यद्यपि नचिकेता कुमार था, तथापि उसकी श्रद्धा और बुद्धी अच्छी थी। उसने पितासे पूछा कि ' पिताजी! आप मुझे किसको अर्पण करोगे! ' दो तीन बार पिताजीसे पूछनेपर वे क्रोधित होकर बोले कि ' मैं तुझे मृत्युको दूंगा। '

वाजश्रवामें दूसरा भी दोष यह था कि वे क्रोधी थे। महाभारत, तै० ब्राह्मण, कठउपनिषद आदि सर्वत्र वाजश्रवाको क्रोधी ही बताया है। यज्ञ कर्ताको क्रोधसे दूर रहना चाहिये। और शान्ति पूर्वक अच्छीसे अच्छी वस्तुका यज्ञमें समर्पण करना चाहिये। वाजश्रवामें ये दो दोष थे।

निकम्मी निरुपयोगी गौओंका दान करके मैं बडा दानी बनूंगा ऐसा वह समझता था और पुत्रके पूछनेपर वह क्रोध भी करनेलगा था। यज्ञ कर्ताको इन दोषोंसे बचना चाहिये। पिता क्रोधित हुए देखकर नचिकेताको आश्चर्य हुआ और वह मनही मनमें सोचने लगा—

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः ।
किं स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति ॥ ५ ॥

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथाऽपरे ।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ ६ ॥

नचिकेता पिताका वचन सुनकर अपने ही मनमें सोचता है कि–मैं (बहूनां प्रथमः एमि) बहुत शिष्योंमें पहिला रहता हूं, तथा (बहूनां मध्यमः एमि) बहुतोंमें मैं मध्यम रहता हूं । पर मैं किसीमें अधम नहीं हूं । अतः मेरा पिता (यमस्य किं स्वित् कर्तव्यं) यमका कौनसा भला कर्तव्य है (यत् मया अद्य करिष्यति) कि जो मुझसे आज करायेगा ? (५) । (यथा पूर्वे अनुपश्य) जैसे पूर्व पुरुषोंको देखकर, तथा (अपरे प्रतिपश्य) साम्प्रतके पुरुषोंको भी देखकर ऐसा पता लगता है कि (मर्त्यः सस्यं इव पच्यते) मनुष्य धानके समान पकता है और (पुनः सस्यं इव आ जायते) फिरसे धानके समान ही उत्पन्न होता है (६) ॥

(५–६) नचिकेता सोचने लगा कि मुझे यमको देनेसे क्या बनेगा ? मैं पढाईमें कम नहीं हूं.मैं कईयोंमें पहिला और कईयोंमें मध्यम हूं अतः यमको देनेका दण्ड मुझे क्यों दिया जा रहा है । पर मनुष्य अपने कर्म विपाकके अनुसार भोग प्राप्त करता है। अतः मुझे मृत्युदण्ड पिताजीने दिया है वह भोगनाही होगा, अथवा वह मेरे पूर्व कर्मानुसारही होगा । जो हो मैं यमके पास जाता हूं और वहां मैं धैर्यसे जो होगा उसका सामना करता हूं । अब मृत्युसे भी मैने डरना नहीं है । निडर होकर यमके पास वह जाता है ।

अतिथि सत्कार

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान् ।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति, हर वैवस्वतोदकम् ॥ ७ ॥
आशाप्रतीक्षे संगत ँ् सूनृतां चेष्टापूर्ते पुत्रपशूँश्च सर्वान्,
एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ८

(ब्राह्मणः अतिथिः गृहान् प्रविशति) ब्राह्मण अतिथि बनकर जब घरमें प्रवेश करता है तब वह साक्षात् (वैश्वानरः) अग्नि ही होता है। (तस्य एतां शान्ति कुर्वन्ति) उसकी इस तरह शान्ति करते हैं। हे (वैवस्वत ! उदकं हर) यम ! उसको जल आदि दे (७)॥ (ब्राह्मणः यस्य अल्पमेधसः पुरुषस्य गृहे) ब्राह्मण जिस मूढ पुरुषके घरमें (अनश्नन् वसति) बिना भोजनके भूखा रहता है, उसकी (आशा-प्रतीक्षे) आशाएं और आकांक्षाएँ, (संगतं) उसकी सत्संगति, (सूनृतां) उसका सत्य तथा प्रिय भाषण, (इष्टा पूर्ते) उसके यज्ञ और जनोपकारके कार्य, (सर्वान् पुत्र पशून्) उसके सब पुत्र और पशु, (एतत् वृंक्ते) इस सबको वह नष्ट कर देता है (८)॥

(७-८) नचिकेता यमके घर गया। यमको धर्मराज कहते हैं। वह आदर्श गृहस्थी है। वह कभी अशुद्ध अथवा अधार्मिक आचरण नहीं करता। पर ऋषिकुमार नचिकेता जिस समय यमधर्मके पास गया, उस समय यम घरमें नहीं था। यमके घरवालों ने भी उसकी पूछताछ नहीं की, इस कारण उस ऋषिकुमार को यमके घर तीन दिन और तीन रात्रीतक भूखा रहना पडा। किसी गृहस्थीके घर ब्राह्मण अतिथि तीन दिन भूखा रहे यह तो बडा घोर अनर्थ है। सब पुण्यका क्षय इससे हो सकता है। और यह तो स्वयं धर्मराजके घर ही हुआ !! जो सबका न्याय करता है उसीके घर ऐसा पाप हुआ !!

यम घरमें नहीं था। पर उसके घरवाले तो होंगे। उनमेंसे किसीने इस अतिथिका सत्कार क्यों नहीं किया। इस प्रश्नका उत्तर यहां नहीं है। पर ब्राह्मण अतिथि तनिादिन गृहस्थीके घर भूखा रहा इतनी कथा यहां तक हुई है।

धर्मराज यम अपने घर आये; तब उनको पता लगा कि मेरे घर एक ब्राह्मण कुमार अतिथि रूपसे आया है और वह तीन दिन भूखा रहा है। घरवालोंने उससे कहा कि यह ऐसा बना है। अब कृपा करके उस अतिथिको (**उदकं हर**) जल तो दो। जलपान आदि पूछकर उसका सत्कार तो कर। यह (**गृहान् वैश्वानरः प्रविशति**) घरको आग लग जानेके समान घोर अनर्थ हुआ है। अतः इस

अतिथि रूप अग्निकी शान्ति तो कर, नहीं तो यह अग्नि तेरा सब पुण्य जलाकर भस्म कर देगा। घरमें ब्राह्मण अतिथि तीन दिन भूखा रहे, यह किसी भी गृहस्थीको योग्य नहीं है और तू तो धर्मकी व्यवस्था करनेवाला देवराजका बडा अधिकारी है। अतः तुम्हें तो यह सर्वथा अनुचित है। अतः इस अतिथिको प्रथम प्रसन्न करनेका यत्न कर। यह सुनकर यम ब्राह्मण कुमार नचिकेताके सन्मुख जाकर कहता है-

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्, स्वस्ति मेऽस्तु, तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥ ९ ॥

यम कहता है-हे (ब्रह्मन्) ब्राह्मण! (नमस्यः अतिथिः) तू नमस्कार करने योग्य अतिथि (मे गृहे अनश्नन् यत् तिस्रो रात्रीः अवात्सीः) मेरे घरमें बिना भोजनके जो तीन रात्री तक रहा है, (तस्मात्) इस कारण (ब्रह्मन्) हे ब्राह्मण! (प्रतित्रीन् वरान् वृणीष्व) प्रत्येक दिनके बदले एक ऐसे तीन वर मांग। (ते नमः अस्तु) तुझे नमस्कार हो और (मे स्वस्ति अस्तु) मेरे लिये कल्याण हो (९)।

(९) अतिथि नमस्कार करने अर्थात् सत्कार करने योग्य होता है। यहां यमके घर आया अतिथि तीन दिन भूखा रहा है। यह गृहस्थ धर्मके अत्यंत विरुद्ध हुआ है। अतः यमको कुछ न कुछ प्रायश्चित्त करना चाहिये। वह यमने नचिकेताको प्रसन्न करनेके लिये यहां किया है। इसी प्रायश्चित्तके रूपमें यमने नचिकेताको तीन वर दिये। एक एक दिनके उपवासके लिये एक एक वर यहां दिया है। इससे यमने नचिकेताको प्रसन्न करनेका यत्न किया है। यम मानता है कि इससे नचिकेता प्रसन्न होगा और (मे स्वस्ति अस्तु) मुझ यमका कल्याण होगा। विना अतिथि सत्कारके यमका भी कल्याण नहीं हो सकता, इतना अतिथि सत्कारका महत्त्व यहां बताया है।

नचिकेताका पहिला वर

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माऽभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माऽभिवदेत् प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥ १०॥

नचिकेता अपना प्रथम वर मांगता है-हे (मृत्यो) यम ! (एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे) मैं इन तीन वरोंमेंसे पहिला वर यह मांगता हूं कि (गौतमः शान्तसंकल्पः सुमनाः मा अभि वीतमन्युः) मेरा पिता गौतम शान्त और प्रसन्न मनवाला तथा मेरे प्रति क्रोध रहित (यथा स्यात् प्रतीतः) जैसा व्यवहार करनेवाला होकर (त्वत् प्रसृष्टं मा अभिवदेत्) तुझसे अनुज्ञा लेकर जब मैं जाऊं तब मेरे साथ वह आदरसे बोले (१०) ॥

(१०) यहां नाचिकेता प्रथम वर मांगता है। वह यह है कि 'मेरा पिता प्रसन्न अर्थात् क्रोधरहित होकर मेरे साथ पूर्ववत् प्रेमपूर्ण आचरण करे।' नाचिकेताको पता था कि मेरे वारंवार पूछनेके कारण पिता क्रुद्ध हुआ था और क्रोधवश होकर उन्होने कहा था कि 'तुझे मैं यमको देता हूं।' यह क्रोध उसका शान्त हो और वह पूर्ववत् आनन्द प्रसन्न हो, यह इस प्रथम वरसे उसने मांगा है। यहां पुत्र-धर्म बताया है। पिताने पुत्रपर क्रोध किया तो भी पुत्रको उचित है कि वह अपने पितापर क्रोध न करते हुए उसके साथ प्रेमपूर्ण ही व्यवहार करे। पिताको आनन्द प्रसन्न करनेका प्रयत्न करे। यह पुत्रका धर्म है। नचिकेताका यह प्रथम वर सुनकर यमधर्म आनन्दसे वह वर उसको देता है—

यमका वरप्रदान

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।
सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात्
प्रमुक्तम्॥ ११॥

यम कहता है—

(मत्प्रसृष्टः औद्दालकिः आरुणिः) मुझसे अनुमोदित हुआ तेरा पिता

औद्दालकि आरुणि तुझसे (यथा पुरस्तात् प्रतीतः भविता) पहिले जैसा वर्ताव करनेवाला ही होगा । (मृत्युमुखात् प्रमुक्तं त्वां ददृशिवान्) मृत्युके मुखसे मुक्त होकर आये हुए तुझे जब वह देखेगा, तब (वीत-मन्युः) क्रोधरहित होकर (सुखं रात्रीः शयिता) सुखसे रात्रीमें सोयेगा (११) ॥

(११) यम नाचिकेतासे कहता है कि हे नाचिकेता ! जब तू घर जायगा, तब तेरा पिता औद्दालकि आरुणि बडा प्रसन्न होगा । तू मृत्युसे बचकर आया है। यह देख किस पिताको प्रसन्नता न होगी। पुत्र मरा था वह फिर जीवित हुआ यह देखकर तेरे पिताको बडा ही आनन्द होगा । मृत्युके मुखसे छूटकर आये हुए तुझे देखकर तेरा पिता आनन्दप्रसन्न होगा, उसका मन अपूर्व शान्तिका अनुभव करेगा और इस समाधानसे वह रात्रीके समय सुखसे उत्तम गाढ निद्राका आनन्द लेगा । यह वर तुझे मैं देता हूं । अब दूसरा वर मांग ।

यह यमका वाक्य सुनकर नाचिकेता दूसरा वर मांगता है—

नचिकेताका द्वितीय वर

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२ ॥
स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्ते एतद्द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥

नचिकेता कहता है-(स्वर्गे लोके किंचन भयं न अस्ति) स्वर्ग लोकमें कुछ भी भय नहीं है, (न तत्र त्वं) वहां तू भी नही है, अर्थात् वहां मृत्यु भी नहीं है, वहां (जरया न बिभेति) बुढापेसे कोई डरता नहीं है। (उभे अशनायापिपासे तीर्त्वा) भूख और प्यास इन दोनोंसे पार होकर (शोकातिगः) शोकसे दूर होता हुआ (स्वर्गलोके मोदते) स्वर्ग-लोकमें साधक आनन्द प्रसन्न रहता है (१२) ॥ हे (मृत्यो) यम ! (सः त्वं स्वर्ग्यं अग्निं अध्येषि) सो आप स्वर्गप्राप्ति करानेवाले अग्निको

जानते हैं, इसलिये (त्वं श्रद्दधानाय मह्यं प्रब्रूहि) आप मुझ श्रद्धालुको उसका उपदेश करें । (स्वर्गलोकाः अमृतत्वं भजन्ते) स्वर्ग लोकमें रहनेवाले अमरत्वको प्राप्त करते हैं । (एतत् द्वितीयेन वरेण वृणे) यह मैं दूसरे वरसे वरता हूँ (१३) ॥

(१२-१३) यहां स्वर्गलोकका वर्णन विचार करने योग्य है । यह आदर्श राज्यशासनका अर्थात् भूमिपरके स्वर्गका भी वर्णन है । (१) वहां (**किंचन भयं नास्ति**) किसीको किसीसे कुछ भी भय नहीं होता । सब निर्भय रहते हैं । वहां पीछेसे आकर छुरा भोंकनेवाला कोई दुष्ट नहीं रहता अतः सब जनता निर्भय होकर सुखसे अपना अपना व्यवहार करती है । (२) (**तत्र मृत्युःन**) वहां मृत्युका भय नहीं, अर्थात् वहां अपमृत्यु नहीं है । अर्थात् रोगादिका भी भय नहीं । आरोग्य व्यवस्था वहांकी उत्तम है । (३) (**कः अपि तत्र जरया न बिभेति**) वहां कोई भी बुढापेसे डरता नहीं । आयु बढ जानेपर भी सब स्त्री पुरुष तरुण जैसे रहते हैं । इतनी शक्ति, इतना ओज और इतना आरोग्य वहां रहता है । (४) (**अशनाया-पिपासे उभे तीर्त्वा**) भूख और प्यास वहां किसीको कष्ट नहीं देती । अर्थात् वहां खानपानका प्रबंध उत्तम रहता है । सबको उत्तम अन्न और उत्तम पेय प्राप्त होता है । रहनेके लिये स्थान, ओढने पहरनेके लिये कपडे, खानेके लिये अन्न, पीनेके लिये रसपान आदि सबका प्रबंध वहां यथायोग्य रहता है, इसलिये वहां किसीको चिन्ता नहीं होती । और चिन्ता न होनेसे (५ **शोकातिगः मोदते**) शोकरहित होकर वहां सब आनन्दसे रहते हैं ।

(१) सबको सुरक्षा और निर्भयताकी प्राप्ति, (२) अपमृत्यु, रोग, आदि भयसे विमुक्त रहने योग्य आरोग्यरक्षाका सुप्रबंध, (३) वृद्ध आयुमें भी तरुण जैसा उत्साह रहने योग्य रहन सहनका प्रबंध, (४) खानपानकी चिंता न रहना अर्थात् सबको आवश्यक खानपान योग्य समयमें प्राप्त होना, (५) आनन्द प्रसन्न होकर सबका रहना सहना होना । यह स्वर्गसुख है । यह उत्तम राज्यव्यवस्थासे इस पृथ्वीपर भी प्राप्त हो सकता है । अर्थात् यह आदर्श राज्यव्यवस्था

है। ऐसी उत्तम राज्यव्यवस्था देवलोकमें अर्थात् त्रिविष्टपमें थी, यह यहां कहा है। मानवोंके सामने यह आदर्श इस उपनिषद्‌ने रखा है।

इस स्वर्गलोकके आनन्दको प्राप्त करना चाहिये। इसकी प्राप्ति करनेका साधन एक अग्नि है। वह अग्नि कौनसा है और उसको प्रदीप्त किस तरह करते हैं, उसमें किसका हवन किया जाता है इस विषयमें नचिकेताने यमसे पूछा है। और इसका उत्तर यम देता है—

यमका द्वितीय वर देना

प्र ते ब्रवीमि, तदु मे निबोध, स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥१४॥
लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥ १५ ॥

हे (नचिकेतः) नचिकेता ! (अनन्तलोकाप्तिं अथो प्रतिष्ठां स्वर्ग्यं अग्निं प्रजानन्) अनन्त सुखदायक लोकोंको देनेहारे, तथा सबके आधार, वैसे ही स्वर्गदेनेवाले अग्निको यथावत् जाननेवाला मैं, (ते प्रब्रवीमि) तुझे बतलाता हूं, (मे तत् उ निबोध) मुझसे उस विषयका ज्ञान तू प्राप्त कर। (एतत् गुहायां निहितं त्वं विद्धि) यह अपनी बुद्धिमें रखा है यह तू समझ (१४) ॥ यमने उस (लोकादिं तं अग्निं) लोकोंके आदि कारण अग्निका तथा (याः यावतीः वा यथा वा इष्टकाः) जो जितनी और जिस प्रकारकी उसकी साधन सामग्री चाहिये उसका सब आवश्यक ज्ञान (तस्मै उवाच) उसको बतलाया। (स च अपि यथा उक्तं तत् प्रत्यवदत्) उस नचिकेताने भी, जैसा उसे कहा था, वैसा उस ज्ञानको दुहरा दिया। (अथ तुष्टः मृत्युः पुनः आह) तब प्रसन्न हुए मृत्युने उसे फिर कहा (१५) ॥

(१४-१५) यम कहता है कि— हे नचिकेता ! मैं तुझे दूसरा वर, जो तूने इस समय मांगा है, देता हूं। इस अग्निकी उपासनासे स्वर्ग प्राप्त होता है। यह

अग्नि (गुहायां निहितं विद्धि) बुद्धिमें है यह तू जान। इससे अनन्त सुखदायक लोकोंकी प्राप्ति होती है, यह अग्नि सबका (प्रतिष्ठां) आधार है। सब मानवी अभ्युदय इसीसे शक्ति प्राप्त करके सिद्ध किये जा सकते हैं। यह अग्नि (लोकादि) लोकोंका आदि ह अर्थात् इससे सब मनुष्योंकी सब प्रकारकी उन्नति होती है। लोगोंके अभ्युदय आर उत्कर्षका यह आदि कारण है।

इस तरह इसका वर्णन करके इस अग्निका स्वरूप बताया और इसमें इष्टिका कितनी लगती हैं और उसकी रचना किस तरह की जाती है इसका भी आवश्यक सब वर्णन यमने किया और नचिकतासे पूछा कि बेटा! यह सब तुम्हारी समझमें आगया ?

नचिकेताने यमको सब बताया, जैसा यमने कहा था। इस शिष्यके उत्तरसे यम बडा संतुष्ट हुआ और फिर नचिकेतासे कहने लगा।

यहाँ पाठक समझें कि यह अग्नि मानवोंकी बुद्धिमें है। इसका स्वरूप आगे आनेवाला है। अतः हम भी इसका अधिक वर्णन आगे उचित स्थानपर करेंगे। पाठक यहां इतना ही समझें कि स्वर्ग देनेवाला यह अग्नि मानवोंकी बुद्धिमें रहता है और वहीं उसको प्रदीप्त करना आवश्यक ह।

प्रसन्न होकर यम फिर नचिकेतासे कहता है—

यम और एक वर देता है

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भविताऽयमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण॥१६
त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत् तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमाँ शान्तिमत्यन्तमेति॥१७
त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद् विदित्वा य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥१८॥
एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं प्रवक्ष्यन्ति जानसस्तृतीयं वरं नाचिकेतो वृणीष्व॥१९।

(प्रियमाणः महात्मा तं अब्रवीत्) प्रसन्न हुआ महात्मा यम उसे बोला कि (अद्य भूयः इह तव वरं ददामि) आज यहां तुझे एक और वर देता हूं। (अयं अग्निः तव एव नाम्ना भविता) यह अग्नि तेरेही नामसे प्रसिद्ध होगा। (एतां अनेकरूपां सृंकां गृहाण) इसके अतिरिक्त अनेक रंगोंवाली यह माला देता हूँ उसका धारण कर (१६)॥ (त्रिणाचिकेतः) तीन वार जिसने इस नाचिकेत अग्निमें हवन किया है, (त्रिभिः संधि एत्य) माता-पिता-आचार्य इन तीनोंका संधि जिसने किया है और (त्रिकर्म-कृत्) जो तीन कर्म अध्ययन-अध्यापन-दान करता रहता है वह (जन्म-मृत्यू) जन्म मृत्युको तर जाता है। (ब्रह्मजज्ञं ईड्यं देवं विदित्वा) ब्रह्मसे उत्पन्न हुओंको जाननेवाले प्रशंसनीय देवको जान कर और उसको (निचाय्य) प्रदीप्त करके (इमां शान्ति अत्यन्तं एति) इस शान्तिको अत्यन्त पूर्णरूपसे प्राप्त करता है (१७) ॥ (त्रि-णाचिकेतः) तीन वार जिसने इस नाचिकेत अग्निमें हवन किया है, (एतत् त्रयं विदित्वा) जो इन तीनोंको ठीक ठीक जानता है (य एवं विद्वान् नाचिकेतं चिनुते) और ऐसा विद्वान् इस नाचिकेत अग्निको प्रदीप्त करता है, (सः मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य) वह मृत्युके फासोंको दूर फेंक कर, (शोकातिगः) शोकसे परे होकर, (स्वर्गलोके मोदते) स्वर्गलोकमें आनन्दसे रहता है (१८)॥ हे (नचिकेतः) नचिकेता ! (यं द्वितीयेन वरेण अवृणीथाः) जिसको तूने दूसरे वरसे वरा है (एष ते स्वर्ग्यः अग्निः) यह तेरा स्वर्गदेनेवाला अग्नि है। (जनासः एतं अग्निं तव एव प्रवक्ष्यन्ति) सब लोग इस अग्निको 'यह तुम्हाराही है' ऐसा वर्णन करेंगे। अब हे (नचिकेतः) नचिकेता ! (तृतीयं वरं वृणीष्व) तीसरा वर मांग (१९)॥

(१६) नचिकेताकी ज्ञानग्रहण करनेकी शक्ति देखकर यम बडा प्रसन्न हुआ और नचिकेताको और एक वर देने लगा। वह वर यह है कि 'इस अग्निका नाम जगत्में नचिकेता ही प्रसिद्ध होगा' नचिकेताका नाम इस तरह यमकी प्रसन्नतासे अमर हुआ। यमने प्रसन्न होकर नचिकेताको (अनेकरूपां सृंकां गृहाण)

अनेक रूपवाली माला भी दी। अग्निको नचिकेताका नाम दिया, और उस शिष्यको सुंदर अनेक रंगरूपवाली माला दी, यह माला 'ज्ञानतत्त्व-मयी माला' ही है। न यह फूलोंकी माला है, ना ही रत्नोंकी माला है। बुद्धिमें रहनेवाले ज्ञानाग्निके साथ रहनेवाली, तत्त्वज्ञान-परंपराको अबाधित रखनेवाली यह ज्ञानमाला है। वह यमने नचिकेताको दी और नचिकेताने वह धारण की।

शान्तिस्थापनका मार्ग

(१७-१९) अब यम नचिकेताको शान्तिका मार्ग बताता है। (त्रि-नाचिकेतः) इस बुद्धिमें रहनेवाले अग्निको तीन वार जिसने प्रदीप्त किया है। अर्थात् ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद इन तीन वेदोंसे जिसने अपनी बुद्धिमें रहनेवाले ज्ञानरूप अग्निको प्रदीप्त किया है, तथा (त्रिभिः संधिं एत्य) माता-पिता-आचार्य इनसे संबंध करके जिसने उत्तम ज्ञान बढाया है (त्रि-कर्म-कृत्) जो अध्ययन-अध्यापन-दान ये तीन कर्म करता है वह (जन्मसृत्यू तरति) जन्ममृत्युके पार हो जाता है।

उक्त तीन प्रकारोंका और भी वर्णन हो सकता है। अध्यात्मज्ञान, आधिभौतिक ज्ञान और आधिदैविक ज्ञान ये तीन प्रकारके ज्ञान जिसने प्राप्त किये हैं, ज्ञान-कर्म-उपासनासे जिसने अपना ज्ञान बढाया है, अपना वैयक्तिक, राष्ट्रीय तथा जागतिक कर्तव्य जो करता है वह जन्म मृत्युको तरता है अर्थात् अमर होता है। इस तरह अनेक प्रकारोंसे इस १७ वें मन्त्रकी व्याख्या की जाती है। बुद्धिमें ज्ञानाग्नि रहता है। उसको बढाना चाहिये और अपने कर्तव्य करने चाहिये। यह इसका भाव है।

वेदादि ग्रन्थोंसे, ज्ञानियोंके सत्संगसे तथा सद्गुरुके उपदेशसे बुद्धिमें स्थित ज्ञानाग्नि प्रज्वलित होता है। इससे जो अपने कर्तव्य निश्चित होते हैं वे करने चाहिये। इन कर्तव्योंमें अपने वैयक्तिक, अपने समाजके सामूहिक और विश्वहितके कर्तव्य मुख्य हैं। ये तीन कर्तव्य करने चाहिये।

आज भी ग्रन्थोंसे, शिक्षकोंसे, व्याख्यानोंसे मनुष्यको ज्ञान मिलता है, उस ज्ञानका उपयोग मनुष्य करता है और वह वैयक्तिक, सामाजिक तथा विश्वसंबंधी

कर्तव्य करता है । माता-पिता-आचार्यसे ही मनुष्यके पास ज्ञान आता है । आचार्यके रूप पृथक् पृथक् होंगे, तथापि प्रथम मातासे, पश्चात् पितासे, उसके पश्चात् आचार्यसे ज्ञान इसके पास आता है । आज हमारे पास वृत्तपत्र, (रेडिओ) आकाशवाणी, आदि नये साधन आगये हैं । इनमे उत्तम रीतिसे ज्ञान प्राप्त होनेकी संभावना है । मनुष्यकी यद्यपि इन साधनोंसे उत्तम प्रवृत्ती नहीं हुई, तथापि यदि मनुष्य इनका अच्छा उपयोग करेगा तो उसका उत्तम कल्याण हो सकता है इसमें संदेह नहीं है ।

यहां ' जन्म-मृत्यु ' ये पद ' दुःख ' की परंपरा बतानेके लिये हैं । इस शुद्ध ज्ञानसे दुःखकी परंपरा दूर की जा सकती है । सब प्रकारके दुःख ज्ञानसे ही दूर होते हैं । ज्ञानसे दुःख निवारणके लिये क्या करना चाहिये इसका पता लगता है, मनुष्य वैसा करता है और दुःखमुक्त होता है । देखिये शरीरधारी मनुष्यको प्रतिदिन भूखके कष्ट होते हैं, अन्नके खानेसे भूख दूर होती है, यह ज्ञान मनुष्यको प्राप्त होता है, तदनुकूल वह प्रयत्न करता है, अन्न सिद्ध करता है, उसका सेवन करके भूखको दूर करता है । इसीतरह रोगभय, अनारोग्य, निर्बलता आदि अनेक कष्टोंको वह दूर करता है । ज्ञानसे ही मनुष्य यह सब कर सकता है ।

' तीन वार ज्ञानाग्निको प्रज्वलित करना, तीनोंसे सन्धिको प्राप्त करना और तीन कर्मोंको करना ' इस सांकेतिक भाषाका अर्थ यह है । पाठक विचार करके इसका आशय पूर्वोक्त प्रकार जान सकते हैं ।

" (ब्रह्मजज्ञं ईड्यं देवं विदित्वा) ब्रह्मका अर्थ वेदका ज्ञान है. इस ज्ञानसे जाननेयोग्य जो पूजनीय देव है, उसको जानकर और उसको (निचाय्य) अनुभव करके साधक (अत्यन्तं शान्तिं एति) अत्यन्त शान्तिको प्राप्त करता है ।

पूर्वोक्त प्रकार तीन बार इस बुद्धिमें स्थित ज्ञानाग्निको प्रज्वलित करके, और ये तीन कर्तव्य करनेके हैं यह जानकर जो विद्वान् इस बुद्धिके अग्निको प्रज्वलित

करता है, वह मृत्यके पाशको तोडता है, शोक दूर करता है और स्वर्गलोकमें अत्यंत आनन्दमें रहता है ।

'हे नचिकेता ! यह स्वर्गसुख देनेवाला अग्नि है, तूने इसको द्वितिय वरसे मांगा था, वह तुझे अब विदित हुआ है, तुम्हारे नामसे ही यह प्रसिद्ध होनेवाला है । अब तू अपना तीसरा वर मांग ।'

जो यमने बीचमें तीसरा वर दिया वह तो यमने सन्तुष्ट होकर दिया था । वह चौथा वर समझो । अब यहां बुद्धिमें स्थित अग्निका स्वरूप देखिये—

विश्व
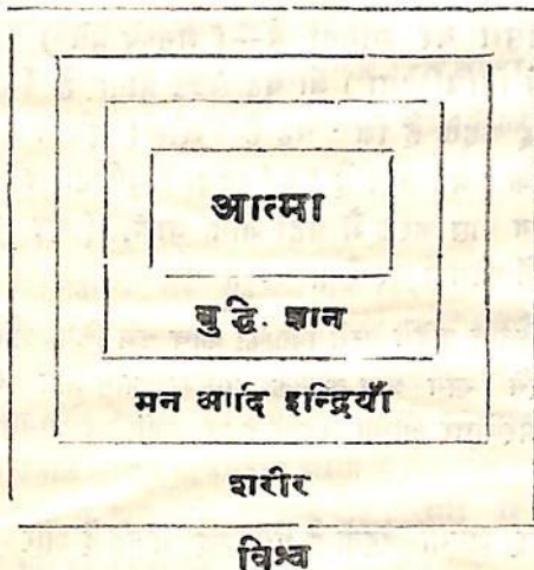
बुद्धिके अन्दर जो ज्ञान है और जो आत्माके साथ रहता है वह यह अग्नि है । आत्माका ज्ञान तो अभी नचिकेताको मिलना है । यहांतक बुद्धिके ज्ञानका ही वर्णन हुआ है । ज्ञानसे ही स्वर्गसुख मिल सकता है । जितना ज्ञान मनुष्यके पास होगा उतना वह इस विश्वको सुखपूर्ण कर सकेगा । जगतमें ज्ञानसे ही सुखका संवर्धन हो सकता है । इस ज्ञानकी वृद्धि करनी चाहिये और उसमें सात्विकता बढानी चाहिये ! सच्चे सुखका यही एक मार्ग है वह यह कि सत्य ज्ञानका संवर्धन करना और उसको मानवी जीवनमें ढालना ।

❀

स्वर्गलोक इस भूमण्डलपर भी प्रगट हो सकेगा, तथा मरणोत्तर शान्तिका नाम भी स्वर्ग है। दोनों ज्ञानसे ही मिल सकते हैं।

नचिकेताका तीसरा वर

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाऽहं वराणामेव वरस्तृतीयः॥ २०॥

नचिकेता तीसरा वर मांगता है--(मनुष्ये प्रेते) मनुष्यकी मृत्यु होनेपर (या इयं विचिकित्सा) जो यह संदेह होता है कि, (एके अयं अस्ति इति) कई कहते हैं कि ' यह है ' और (एके न अयं अस्ति इति) दूसरे कहते हैं कि ' यह नहीं है '। (त्वया अनुशिष्टः अहं एतत् विद्यां) आपके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके मैं यही जान जाऊं, (एष वराणां तृतीयः वरः) यह वरोंमें तीसरा वर है॥ २०॥

(२०) नचिकेताने पहिले वरसे पिताका क्रोध कम किया और उसको प्रसन्न किया, दूसरे वरसे स्वर्ग प्राप्त करनेके अग्निका ज्ञान प्राप्त किया। और अब तीसरे वरसे वह मरणोत्तर आत्मा रहता है वा नहीं, यह जानना चाहता है। वह कहता है—

'मरनेके पश्चात् आत्मा रहता है ऐसा कई मानते हैं और दूसरे विचारक कहते हैं कि मरनेके पश्चात् कुछ भी नहीं रहता। इसमें सत्य क्या है, वह मुझे बताओ, ऐसा यह तीसरा वर नचिकेताने मांगा है।' शरीरके नाशसे आत्मा विनष्ट होता है वा नहीं? अथवा शरीर नष्ट होने पर आत्मा रहता है। यह नचिकेताका प्रश्न है।

यम इस प्रश्नका उत्तर देना नहीं चाहता। यह नचिकेताको दूसरे दूसरे प्रलोभनोंमें अटकाना चाहता है, पर नचिकेता किसी भी प्रलोभनमें नहीं फंसता। यह हृदयस्पर्शी संवाद अब पाठक यहां देखें —

अज्ञेय विषय

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥ २१

यम कहता है--(देवैः अत्र अपि पुरा विचिकित्सितं) देवोंने भी इस विषयमें पहिले संदेह किया था, (न हि सुविज्ञेयं) इसका जानना आसान नहीं है । (एष धर्मः अणुः) यह सूक्ष्म ज्ञान है । हे (नचिकेतः) नचि-केता ! (अन्यं वरं वृणीष्व) और कोई वर मांग । (मा मा उपरोत्सीः) मेरे ऊपर दबाव न डाल । (एनं मा अतिसृज) इस वरको छोड दे (२१)

(२१) यमने कहा कि 'हे नाचिकेता ! प्राचीन समयमें अनेक ज्ञानियोंने इस विषयकी खोज करनेका प्रयत्न किया था । पर वे इसको जान नहीं सके ।'

नैनद्देवा आप्नुवन् ॥१॥ (ईश. उ.)

' देव इसको प्राप्त नहीं कर सके' यह ईश उपनिषदका कथन है। केन उपनि-षदमें तो यही कहा है कि 'आत्माको देव नहीं जान सके'। यही यहां कहते हैं। देवोंने इसे जाननेका यत्न किया था। पर यह सुखसे जानने योग्य नहीं है ऐसा उनका निर्णय हुआ। जो देवोंको नहीं प्राप्त हो सका वह कुमार नचिकेताको कैसे प्राप्त होगा । इसलिये यम नाचिकेतासे कहता है कि कोई दूसरा वर मांग। मेरे ऊपर व्यर्थ दबाव न डाल, मुझे व्यर्थ न छेड। दूसरा वर मांग और इसीके उत्तर देनेके लिये मुझे बाधित न कर ।

यमका भाषण इस तरह सुनकर नचिकेता बडे धैर्यसे कहता है—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् २२

नचिकेता कहता है--' हे (मृत्यो) यम ! (यत् देवैः अत्र अपि विचिकित्सितं किल) जिस कारण देवोंने भी इस विषयमें सन्देह किया था, (त्वं च यत् न सुविज्ञेयं आत्थ) और आप भी कहते हैं कि इसका

जानना सुबोध नहीं है। और (अस्य वक्ता च त्वादृक् अन्यः न लभ्यः) इस विषयका उपदेश करनेवाला आपसे भिन्न दूसरा कोई मिलनेवाला नहीं है, इसलिये (एतस्य तुल्यः कश्चित् अन्यः वरः न) इसके समान कोई दूसरा वर मैंने मांगना नहीं है (२२) ॥

(२२) 'अजी यम धर्म आचार्य ! आप कहते हैं कि देवोंने भी इस विषयमें इससे पूर्व बहुत खोज की थी, और यह सुखसे जानने योग्य नहीं है ऐसा उनका निर्णय हुआ. ऐसा जो आपने कहा, इसीसे यह सिद्ध हुआ ह कि यही प्रश्न पूछने योग्य है। इसके अतिरिक्त तुम्हारे जैसा सुयोग्य आचार्य इसका उत्तर देनेमें समर्थ दूसरा कोई मिलने वाला नहीं है। इसलिये मैं तो यही वर मागूंगा, मुझे कोई दूसरा वर मांगना नहीं है।'

ऐसा नचिकेताने कहा। तथापि यम फिर इस कुमारको अन्यान्य प्रलोभनोंमें फंसाना चाहता है। देखिये आगे यम क्या कहता है—

भोगोंको प्राप्त कर

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व, स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि २३
एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि॥२४
ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामाँश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः॥२५

यम अब नचिकेताको प्रलोभनोंके द्वारा उस वरसे हटाना चाहता है- (शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व) सौ सौ वर्षकी आयुवाले पुत्र और पौत्र मांग, (बहून् पशून् हस्तिहिरण्यं अश्वान्) बहुतसे पशु, हाथी, सोना और घोडे वरमें ले, (भूमेः महत् आयतनं वृणीष्व) भूमिका विस्तृतभाग वर ले,

(स्वयं च जीव शरदः यावत् इच्छसि) और तू उतने वर्ष जीवित रह जितने तू चाहता है (२३) ॥ (एतत्तुल्यं वरं, यदि मन्यसे, वृणीष्व) यदि तू इसके समान दूसरा कोई वर चाहता है तो उसको मांग, (वित्तं चिरजीविकां च) धन और दीर्घ आयु मांग ले। हे (नचिकेतः) नचिकेता! (महा भूमौ त्वं एधि) विस्तृत भूमिपर तू राज्य कर। (त्वा कामानां कामभाजं करोमि) मैं तुझे सारी कामनाओंका भोग करनेवाला बनाता हूं (२४) ॥ (ये ये कामाः मर्त्यलोके दुर्लभाः) जो जो कामोपभोग मर्त्यलोकमें दुर्लभ हैं, (तान् सर्वान् कामान् छन्दतः प्रार्थयस्व) उन सब कामोपभोगोंको अपनी इच्छानुसार मांग ले। (हि इमाः ईदृशाः सरथाः सतूर्याः रामाः मनुष्यैः न लम्भनीयाः) ये ऐसी सुंदर स्त्रियां रथोंके साथ और बाजोंके समेत मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकते, हे नाचकेता ! (मत्प्रत्ताभिः आभिः परिचारयस्व) मेरी प्रेरणासे इनको प्राप्त कर और इनसे अपनी सेवा करा। पर (मरणं मा अनुप्राक्षीः) मरणके विषयमें मत पूछ (२५) ॥

(२३-२५ यम कहता है कि " हे नचिकेता, तू सौ वर्षोंकी पूर्ण आयु, पुत्र और पौत्र, पशु, हाथी, घोडे, गावें, सुवर्ण, रत्न, धन, भूमीका बडा राज्य आदि जितने चाहे उतने भोग मांग। धन और दीर्घ आयुष्य तथा जो चाहिये सो भोग मांग। जो दुर्भल भोग इस लोकमें हैं उनको तू मांग। सुन्दर स्त्रियां, उत्तम रथ, उत्तम बाजे जो इच्छा हो वह वर मांग। परंतु मृत्युके पश्चात् की अवस्थाके विषयमें नहीं पूछना, वह दुर्बोध विषय है। "

इस तरह यम समझाता रहा, पर नचिकेता इन भोगोंमें न फंसा। और भोगोंसे निवृत्त हो कर वह कहने लगा कि—

भोगोंका अल्प सुख

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा ।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥
अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् ।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥
यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्सांपराये महति ब्रूहि नस्तत् ।
योऽयं वरो गूढमनु प्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥ २९ ॥

नचिकेता उत्तर देता है--हे (अन्तक) यम ! (मर्त्यस्य सर्वेन्द्रियाणां यत् तेजः) मर्त्य मानवकी सब इन्द्रियोंमें जो तेज रहता है, (तत् एतत् श्वोऽभावाः जरयन्ति) उस तेजको कल जिनका अभाव होनेवाला है ऐसे ये भोग जीर्ण या क्षीण करते हैं । (अपि सर्वं जीवितं अल्पं एव) और सब जीवित-कितना भी लम्बा मिला तो वह भी--अल्प है ऐसाही प्रतीत होता है । (तव एव वाहाः ,तव नृत्यगीते) सो आपही अपने घोडे और अपने नृत्य और गीत अपने पास रखें (२६) ॥ (मनुष्यः वित्तेन तर्पणीयः न) मनुष्य धनसे तृप्त नहीं हो सकता । (त्वा चेत् अद्राक्ष्म, वित्तं लप्स्यामहे) तेरा दर्शन होनेपर धन जितना चाहे उतना मिलेगा। (यावत् त्वं ईशिष्यसि जीविष्यामः) जितना तू चाहेगा उतने हम जीयेंगे । अतः (मे वरः तु सः एव वरणीयः) मेरा वर तो वही एक है कि जो मेरे द्वारा वरा जायगा (२७) ॥ (क्वधःस्थः जीर्यन् मर्त्यः) भूमिपर नीचे रहनेवाला जीर्ण और क्षीण होनेवाला तथा मरनेवाला मानव (अजीर्यतां अमृतानां उपेत्य प्रजानन्) क्षीण न होनेवाले देवोंके पास जाकर और ज्ञान प्राप्त करके (वर्ण-रति-प्रमोदान् अभिध्यायन्) रग रूपके भोगोंके आनन्दका ध्यान करता हुआ (अतिदीर्घे जीविते कः रमेत) अतिदीर्घ जीवनमें कौन भला आनन्द मान सकता है ? (२८) ॥ हे (मृत्यो) यम ! (यस्मिन् इदं विचिकित्सन्ति) जिसके विषयमें संदेह करते हैं, (यत् महति सांपराये तत् नः ब्रूहि) और जो बडे दूरके परलोकमें है, उस विषयमें हमें उपदेश

कर । (यः अयं गूढं अनुप्रविष्टः वरः) जो यह गूढ स्थानमें प्रविष्ट होकर गुप्त रहनेवाला वर है, (तस्मात् अन्यं वरं नचिकेताः न वृणीते) उससे भिन्न किसी दूसरे वरको नचिकेता नहीं मांगता (२९) ॥

(२६-२९) अजी यम धर्म ! मनुष्यके इंद्रियोंका तेज इन भोगोंसे नष्ट हो जाता है। तथा जितनी भी दीर्घ आयु मिली तो भी वह कम ही प्रतीत होती है। स्त्रियां, बाजे, नाच और गायन है वह सब तुमको ही रहे, वह मुझे नहीं चाहिये। धनसे मनुष्यको तृप्ति नहीं होती। यदि मैं धन चाहूं तो जितना चाहिये उतना धन मुझे मिल जायगा। इसी तरह मृत्युके आनेतक हम जीवित रहेंगे। इसमें मुझे कुछ भी प्रलोभन नहीं है। तुझ जैसे अमर देवके पास आकर मैं जीर्ण होनेवाले भोग चाहूं यह नहीं हो सकता। अधिक दीर्घ आयुमें क्या सुख है ? यह हम जानते हैं। अतः जो वर मैंने मांगा है उससे भिन्न और कोई वर मैं नहीं मांगता। वही वर मुझे चाहिये।

नचिकेताने इस तरह साफ सुनाया। यह सुनकर यम संतुष्ट हुआ और नचिकेताकी प्रशंसा करके उसको वह ज्ञान देने लगा।

॥ प्रथमाध्यायमें प्रथमवल्ली समाप्त ॥

प्रथम अध्याय

द्वितीया वल्ली
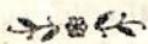
श्रेय और प्रेय

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषँ सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते १
श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते २
स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।
नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ३

यम कहता है--(श्रेयः अन्यत्) श्रेय अर्थात् कल्याण करनेवाली वस्तु भिन्न है और (उत प्रेय अन्यत् एव) प्रिय लगनेवाली वस्तु उससे विभिन्न ही है। (नानार्थे ते उभे पुरुषं सिनीतः) पृथक् परिणामवाली ये दोनों वस्तुयें पुरुषको बाँध देती हैं। (तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति) उनमेंसे श्रेय वस्तुको ग्रहण करनेवालेका भला होता है, और (यः उ प्रेयः वृणीते) जो प्रेयको स्वीकारता है वह (अर्थात् हीयते) अपने उद्देश्यसे गिरता है (१)॥ (श्रेयः च प्रेयः च मनुष्यं एतः) श्रेय और प्रेय ये दोनों मनुष्यके पास आते हैं, (तौ संपरीत्य धीरः विविनक्ति) इनका विचार करके धीर पुरुष उनमेंसे किसी एकको पसंद करता है। (धीरः श्रेयः हि अभिप्रेयसः वृणीते) बुद्धिमान् पुरुष श्रेयको प्रेयसे अधिक पसंद करता है, पर (मन्दः योगक्षेमात प्रेयः वृणीते) मन्द बुद्धिवाला मनुष्य योगक्षेम चलानेके हेतुसे प्रेयको ही स्वीकार करता है (२)॥ हे नचिकेता ! (सः त्वं अभिध्यायन्) तूने अच्छीतरह विचार करके (प्रियान् प्रियरूपान् च कामान् अत्यस्राक्षीः) प्रिय और प्यारे दीखनेवाले भोगोंको छोड दिया है, तथा (यस्यां बहवः मनुष्याः मज्जन्ति) जिनमें बहुतसे मनुष्य डूबते हैं ऐसे (एतां वित्तमयीं सृंकां न अवाप्तः) द्रव्यकी मालाका भी स्वीकार नहीं किया है (३)॥ यह तूने अच्छा किया है।

(१-३) श्रेय और प्रेय ऐसे दो पदार्थ इस जगत्में हैं। 'श्रेय' उसको कहते हैं कि जिससे मनुष्यका सच्चा कल्याण हो सकता है और 'प्रेय' उसको कहते हैं कि जिससे मनुष्यको तात्कालिक सुख मिल सकता है। पूर्वोक्त प्रथम-वल्लीमें यमने जो भोग देनेका प्रलोभन नचिकेताको दिया था वे सब भोग 'प्रेय' अर्थात् तात्कालिक सुख देनेवाले कहे जा सकते हैं। उनमें धर्म और नीतिका बंधन नहीं है। पाठक यह देखेंगे तो उनको पता लग जायगा कि ये केवल भोग ही भोग हैं। इनपर धर्म और नीतिका बंधन आ जायगा, तो येही भोग अंशतः श्रेय बन सकते हैं। जैसा स्त्री के साथ संबंध करके गृहस्थाश्रम करना, जब यह धर्म नियमोंसे रहित होता है तब दोष रूप होता है और यह 'प्रेय' कह-लाता है। पर यह जब धर्म नियमोंसे मर्यादित होता है तब यही श्रेयरूप होकर व्यक्ति, कुल, जाती, समाज, राष्ट्र आदिका उन्नतिकारक होता है। अतः इसीको श्रेय कह सकते हैं। इसी तरह अन्यान्य भोगोंके विषयमें जानना योग्य है।

नचिकेता यहां जो भोगोंसे निवृत्त हुआ था वह धर्ममर्यादा विहीन, नीतिधर्म रहित अमर्याद आसुरी वृत्तीके भोगोंसे दूर रहना चाहता था। और यह उसका करना अत्यन्त योग्य था। वह शाश्वत आत्माका ज्ञान इसलिये पूछता था कि उससे धर्म नियम सिद्ध होंगे और उनकी मर्यादा भोगोंपर और मानवी व्यवहार पर पडकर ये ही भोग दैवी बन जांयगे और ये ही अनन्त सुख तथा शान्ति देनेवाले बनेंगे। इसलिये वह चाहता था कि शाश्वत तत्त्वका ज्ञान मुझे मिल जाय। जगत्के पदार्थ तो यहां हमारे पास हैं ही, पर इन सबपर जिसका नियं-त्रण है वह शाश्वत आत्मतत्त्व है या यह सब अराजक ही विश्व है। यह नचिकेताके प्रश्नका आशय था। यह जानकर यम कहता है कि श्रेय और प्रेय ऐसे दो पदार्थ मनुष्यके सन्मुख आते हैं। इनमेंसे श्रेयके ग्रहण करनेवाले मनु-ष्यका कल्याण होता है और केवल प्रेयका ग्रहण करनेवाला अपने मानव जन्मके ध्येयसे गिरता है। अर्थात् प्रेयके पीछे पडनेवाले मनुष्यको मनुष्यजीवनका ध्येय प्राप्त नहीं हो सकता।

श्रेय और प्रेय मनुष्यके पास आते हैं, उस समय मनुष्य दोनोंका परीक्षण करता है। किससे क्या लाभ होगा इसका विचार मनुष्य करता है। यह विचार करके जो धीर-बुद्धिमान्-होता है वह श्रेयका स्वीकार करता है और अपने जन्मको सफल बनाता है। परंतु जो मन्द बुद्धिवाला बुद्धिहीन होता है वह श्रेयको त्याग कर प्रेयका स्वीकार करता है और जीवनको विफल करता है इसलिये भोगोंमें फंस जाता है और अन्तमें महादुःखमें गिर जाता है।

हे नचिकेता! तुमने ये प्रिय दीखनेवाले भोग छोड दिये, इस धनमयी माला-को अर्थात् बन्धन करनेवाली इस शृंखलाको-इस जंजीरको त्याग दिया है, यह अच्छा किया है। इसी वित्तमयी जंजीरसे-इसी भोगरूप शृंखलासे बहुतसे लोग बांधे जाते हैं। इसीमें सब मनुष्य डूब रहे हैं। यम कहता है कि हे नचिकेता! तुमने प्रेयको त्यागकर श्रेयका स्वीकार किया है यह अच्छा किया है, इससे तुम्हारे जन्मका कल्याण होगा।

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सितं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ४
अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः।
दंद्रम्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ५
न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ६

(या अविद्या विद्या च इति ज्ञाता) जो अविद्या और विद्या करके प्रसिद्ध है, (एते विपरीते विषूची दूरं) ये दोनों विपरीत तथा भिन्न परिणामवाली हैं। (नचिकेतसं विद्याभीप्सितं मन्ये) नचिकेताको मैं विद्याभिलाषी मानता हूं क्योंकि (त्वा बहवः कामाः न अलोलुपन्त) तुझे बहुतसी भोगकी इच्छाओंने भी नहीं ललचाया (४)॥ (अविद्यायां अन्तरे वर्तमानाः) अविद्याके अन्दर रहते हुए (स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः) अपने आपको बडे बुद्धिमान पण्डित समझनेवाले, (मूढाः दन्द्रम्यमानाः परियन्ति) मूर्ख ठोकरें खाते हुए भटकते रहते हैं। जैसे

(अन्धेन एव नीयमाना यथा अन्धाः) अन्धोंसे ले जाये हुए अन्धे ठोकरें खाते हैं (५) ॥ (वित्तमोहेन प्रमाद्यन्तं बालं मूढं) धनके मोहसे प्रमाद करनेवाले बालिश मूर्खको (सांपरायः न प्रतिभाति) परम श्रेष्ठ अवस्थाका ज्ञान नहीं हो सकता। (अयं लोकः, परः नास्ति इति मानी) यही लोक है, परलोक नहीं है ऐसा माननेवाला मूर्ख (पुनः पुनः मे वशं आपद्यते) पुन. पुनः मेरे-मृत्युके-वशमें आ जाता है (६) ॥

(४-६) यम कहता है कि—अविद्या और विद्या ये दो प्रकारके ज्ञान हैं। अविद्या वह ज्ञान है कि जो जागतिक सुखको देनेवाला भौतिक ज्ञान है। इससे मनुष्यको जागतिक सुख मिल सकता है। यहांके सब प्रकारके भोग सुख उसको मिल सकते हैं। आजकलकी व्यावहारिक भाषामें इसको ' विज्ञान ' कहते हैं। इस विज्ञानसे सब प्रकारके यहांके सुखोपभोग मिल सकते हैं। गाडियां, मोटरें, नाना प्रकारके यंत्र और जो भी जागतिक सुखके साधन हैं वे सब विज्ञानकी प्रगतिसे निर्माण होते हैं और मनुष्यको प्राप्त होते हैं। इसका नाम अविद्या अर्थात् अनात्मविद्या है।

विद्या वह है कि जिससे आत्माका ज्ञान होता है। इस जगत्के सर्व पदार्थ जो अग्नि जल विद्युत् सूर्य चन्द्र आदि हैं उनपर जिनका प्रशासन चलता है उस आत्मतत्त्वका ज्ञान विद्या शब्दसे अभिप्रेत है।

ये विद्या और अविद्या, अर्थात् आत्मज्ञान और प्राकृतिक विज्ञान मनुष्यके पास आते हैं। इनका परिणाम पृथक् पृथक् होता है। मनुष्यको परीक्षा करके ही इनका ग्रहण करना चाहिये। नचिकेताने विद्याको अर्थात् आत्मज्ञानको पसंद किया है, क्योंकि मैंने उनके सामने इतने भोग रखे, पर उसका मन उनमें नहीं फंसा और वह आत्मज्ञानको ही प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट करता रहा यह बडा ही अच्छा है। निःसन्देह नाचिकेतामें विद्याके संबंधकी अभिरुची है और भोगोंमें फंसनेकी प्रवृत्ति इसमें नहीं है अतः इस शिष्यकी उन्नति निःसंदेह होगी क्योंकि यह शिष्य ज्ञानप्राप्तिके लिये अन्य सब भोगोंको त्यागनेको तैयार हुआ है।

अविद्यामें अर्थात् जागतिक भोग साधनोंमें फंसनेवाले अपने आपको बडे वैज्ञानिक मानकर घमंड करनेवाले होते हैं। वे समझते हैं कि हम बडे बडे ज्ञान विज्ञानके आविष्कार करते हैं, पर वे आत्मिक ज्ञानकी दृष्टिसे अत्यंत मूढ ही होते हैं, अतः अन्धेके पीछे जानेवाले अन्धोंके समान वे ठोकरें खाते हुए सदा दुःखमें भटकते ही रहते हैं। उनको शाश्वत आनन्दका स्थान नहीं प्राप्त होगा।

धनके लोभसे मूढ बने हुए अज्ञानीको सच्चे कल्याणका मार्ग नहीं दीखता। ये भोगी यही मानते हैं कि यही एक लोक है, परलोक कुछ भी नहीं है। मरनेतकही जो भोग भोगने हैं उनका भोग करो, मरनेके पश्चात् कुछ भी रहता नहीं है। अतः यहीं जितने भोग मिलेंगे उतने प्राप्त करो और उनका भोग करते जाओ। ऐसे भोगी वारंवार मृत्युके वशमें आते हैं और अनेक दुःख भोगते रहते हैं।

सूक्ष्म--ज्ञान

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा ऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः॥७
न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥८॥
नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥९॥

(यः श्रवणाय अपि बहुभिः न लभ्यः) जो श्रवण करनेके लिये भी बहुतोंको प्राप्त नहीं होता, (शृण्वन्तः अपि बहवः यं न विद्युः) सुननेपर भी बहुत लोग जिसे नहीं जानते, (अस्य लब्धा, कुशलः वक्ता आश्चर्यः) इसको प्राप्त करनेवाला और इसका कुशलतासे प्रवचन करनेवाला कहीं कोई आश्चर्यरूप विरला ही होता है। तथा (कुशलानुशिष्टः ज्ञाता आश्चर्यः) कुशल गुरुसे जिसे ज्ञान मिला है। ऐसा ज्ञाता भी आश्चर्यरूप विरला ही है (७)॥ (बहुधा चिन्त्यमानः) वारंवार विचार करनेपर भी

(एषः अवरेण नरेण प्रोक्तः सुविज्ञेयः न) यह आत्मा अज्ञानी मनुष्यके उपदेशसे जानने योग्य नहीं है। (अनन्यप्रोक्ते गतिः अत्र नास्ति) अन्यके अर्थात गुरुके उपदेशके विना इस विषयमें प्रगति नहीं हो सकती। (हि अणुप्रमाणात् अणीयान् अतर्क्यं) क्योंकि यह सूक्ष्मसे सूक्ष्म होनेसे अतर्क्य ही है (८) ॥ हे (श्रेष्ठ) प्रिय ! (एषा मतिः तर्केण न आपनेया) वह ज्ञान स्वयं ही किये तर्कसे नहीं मिलता (अन्येन प्रोक्ता एव सुज्ञानाय) दूसरे गुरुके द्वारा बतलाये जानेपर ही यह ज्ञान होता है, (यां त्वं आपः) जिसे तूने प्राप्त किया है। (बत सत्यधृति असि) निःसंदेह तू सच्चा धैर्यवान् है। हे नचिकेता (त्वादृक् प्रष्टा नः भूयात्) तेरे जैसा पूछनेवाला शिष्य हमें वारंवार मिलता रहे (९) ॥

(७-९) जो आत्माका ज्ञान है वह सुननेके लिये भी बहुतोंको नहीं मिलता क्योंकि वे प्रतिदिन धनकी वृद्धि, भोग साधनोंको इकठ्ठा करना आदिमें लगे रहते हैं। आत्मविद्याके प्रवचन होते रहे तो भी वे उनको हानिकारक समझते हैं और वहां आतेतक नहीं। अब देखिये कि जो आत्मज्ञानका प्रवचन सुनते हैं, उनमेंसे भी बहुतोंके ध्यानमें वह ठीक तरह नहीं आता, इसलिये सुन कर भी उनके लिये वह न सुननेके समान होता है।

इस आत्मज्ञानका उत्तम सुबोध हो ऐसा प्रवचन करनेवाला विरला ही कहीं होगा तो होगा इसको उत्तम रीतिसे प्राप्त करनेवाला अर्थात मननपूर्वक इस आत्मज्ञानको आत्मसात करनेवाला क्वचित् कोई किसी स्थानपर होता है। इसी तरह कुशल गुरुसे उपदेश प्राप्त करके इसको ठीक तरह जाननेवाला आत्मज्ञानी तो बहुतही विरला होता हैं।

(अवरेण नरेण प्रोक्तः) कनिष्ट अर्थात् अज्ञानी मनुष्यके द्वारा उपदेश होनेपर इस आत्माका ज्ञान शिष्यको प्राप्त होगा ऐसा नहीं है। केवल मनन करनेसे ही इसका ज्ञान नहीं होगा। (अनन्यप्रोक्ते गतिः अत्र नास्ति) अनन्य भाव वाले सद्गुरुके द्वारा उपदिष्ट होनेपर फिर इस ज्ञानमें और कोई प्रगति नहीं हो सकती। वही अन्तिम प्रगति है। गुरुके उपदेशके विना यह ज्ञान किसीको मिल भी नहीं सकता। क्योंकि यह अतर्क्य और सूक्ष्म है।

यह आत्मज्ञान केवल तर्कसे नहीं प्राप्त हो सकता । (अन्येन प्रोक्ता) गुरुके द्वारा बताया जानेपर ही (सुज्ञानाय) इस ज्ञानका लाभ उत्तम रीतिसे हो सकता है । हे नचिकेता ! तू सचमुच (सत्यधृतिः असि) निःसंदेह सच्चे धैर्यवाला है, क्योंकि सुखके इतने प्रलोभन तुमने त्याग दिये और इस ज्ञानकी प्राप्तिके लिये तत्पर होकर यहां रहा है । इसालिये मैं कहता हूं (त्वादृक् प्रष्टा नः भूयात्) तेरे जैसा प्रश्न पूछनेवाले शिष्य ही हमें वार वार मिले । ऐसा तू उत्तम शिष्य है । हे नाचिकेता ! तुम धन्य हो ।

जानाम्यहँ शेवधिरित्यनित्यं, न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् । ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यै द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् १०
कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम् ।
स्तोमं महदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ११
तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति १२

(हि शेवधिः अनित्यं इति अहं जानामि) निःसंदेह धनका कोश स्थायी रहनेवाला नहीं है यह मैं जानता हूं । (अध्रुवैः तत् ध्रुवं नहि प्राप्यते) तथा अनित्योंसे उस नित्य ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती, यह भी मुझे विदित है । (ततः मया नाचिकेतः अग्निः चितः) इसलिये मैंने नाचिकेत अग्निको प्रदीप्त किया और उसमें (अनित्यैः द्रव्यैः नित्यं प्राप्तवान् अस्मि) अनित्य द्रव्योंके समर्पण करनेसे नित्य ब्रह्मको मैंने प्राप्त किया है (१०)॥ हे नचिकेता ! तू (धीरः) सचमुच बुद्धिमान् है। क्योंकि तुमने (कामस्य आप्तिं) कामनाओंकी प्राप्ति, (जगतः प्रतिष्ठां) जगतका आधार, (क्रतोः आनन्त्यं) यज्ञका अनन्तत्व, (अभयस्य पारं) निर्भयताकी पराकाष्ठा, (स्तोमं महत्) स्तुतिसे ज्ञात होनेवाला बडा ब्रह्म, और (उरुगायं प्रतिष्ठां) विशेष प्रशंसनीय परम स्थानको (दृष्ट्वा) देखकर (धृत्या अत्यस्राक्षीः) धैर्यसे सब भोग-इच्छाओंको तुमने छोड दिया है (११) ॥ (तं दुर्दर्शं) उसको देखना कठिन है, वह (गूढं अनुप्रविष्टं)

गुप्त स्थानमें रहनेवाला, (गुहाहितं गह्वरेष्ठं) बुद्धिमें रहनेवाला, गूढ दुर्गम प्रदेशमें रहनेवाला. (पुराणं) पुराण पुरुष है। (अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा) अध्यात्मयोगके मार्गसे उस देवको जानकर (धीरः हर्षशोकौ जहाति) बुद्धिमान मनुष्य हर्ष और शोकको छोड देता है (१२)॥

(१०) यम कहता है कि धनकोश अथवा सभी भोगसाधन अनित्य हैं, अर्थात् शाश्वत टिकनेवाले नहीं हैं। और जबतक मनुष्य इन अनित्य भोग साधनोंमें आसक्त रहेगा, तब तक इसको शाश्वत सुख कदापि प्राप्त नहीं होगा। ये दोनों सिद्धान्त अटल हैं। इसलिये भोग साधनोंपरकी आसक्ति छोडनी चाहिये और उनको विश्वसेवाके यज्ञमें समर्पित करना चाहिये। इस समर्पणसे ही मनुष्यको शाश्वत सुख प्राप्त होना संभव है। यही यज्ञ है। यज्ञसे कल्याण और अयज्ञसे दुःख होता है।

इसलिये आगे यम कहता है कि (मया नाचिकेतः अग्निः चितः) मैंने नाचिकेत अग्नि जो पूर्वोक्त प्रकार बुद्धिमें रहता है, उसको प्रदीप्त किया और उसमें सब अनित्य भोग साधनोंका समर्पण किया और इन (अनित्यैः द्रव्यैः नित्यं प्राप्तवान् अस्मि) अनित्य भोग साधनोंके समर्पणसे नित्य शाश्वत कल्याण प्राप्त किया है।

जबतक भोग साधनोंमें मैं आसक्त होकर रहता था, तबतक वे भोग साधन मेरे लिये बंधन कर रहे थे, परंतु जिस समय मैंने आसक्ति छोड दी, भोग साधनोंका समर्पण कर लिया, और यज्ञ करना आरंभ किया, तब उन्ही अनित्य साधनोंके समर्पणसे वे ही साधन कल्याण प्राप्तिके साधन हुए। अनित्य वस्तुओंके यज्ञसे नित्य ब्रह्मकी प्राप्ति हो गयी। ऐसा ही होता है।

किसी भी भोग साधनको लीजिये। जबतक वह भोगसाधन आसक्तिसे बर्ता जायगा, तबतक वह बंधनकारक होगा। परंतु जब वह धर्मानुकूल बर्ता जायगा तब वही पुण्य कर्म बनेगा। अन्न वस्त्रादि भोग साधन स्वार्थ भोगके लिये बर्ते जानेपर वे ही दुःख बढानेवाले होंगे और जिस समय वे ही साधन यज्ञके लिये समर्पित होंगे, उसी समयसे वे शाश्वत कल्याण देने लगेंगे। इसलिये धर्मानुकूल यज्ञ मार्गका अवलंबन करना प्रत्येकको योग्य है।

सच्चा बुद्धिमान

(११) (कामस्य आप्तिं) इछाओंकी संपूर्णतया सफलता कहां होती है (जगतः प्रतिष्ठां) जगत्का मूल आधार कौनसा है, (क्रतोः आनन्त्यं) कर्मोंका अनन्तत्व किस तरह है और उन कर्मोंकी उपयोगिता कैसी है, (अभयस्य पारं) निर्भयताकी पराकाष्ठा कहां होती है, (स्तोमं महत्) स्तुतिसे ज्ञात होनेवाला अथवा जिसकी बडी प्रशंसा की जाती है वह बडा ब्रह्म क्या है, इसका महत्त्व क्या है, (उरुगायं प्रतिष्ठां) विशेष प्रशंसा करने योग्य मूल आधारका स्थान कौनसा है यह सब (ज्ञात्वा) जानकर (धृत्या धीरः भोगान् अत्यस्राक्षीः) धैर्यसे सब भोगोंका तुमने त्याग किया है, इसलिये हे नचिकेता ! तू सचमुच (धीरः) बुद्धिमान है । इसमें संदेह नहीं है ।

आप्तकाम किस तरह हो सकता है, विश्वका आधार जो परमात्मा है वही आप्तकाम है । कर्म अनन्त हैं, उस परमात्माका विश्वरूप है, उसकी सेवाके लिये अनेकानेक कर्म करने चाहिये, ये तो अवश्य ही करने चाहिये, जहां तहां देखो इस विश्वरूपकी सेवा करनेके लिये अनेक कर्म यथायोग्य रीतिसे करनेकी अत्यंत आवश्यकता है । ये कर्म करनेसे ही निर्भयताकी पराकाष्ठा साधकको प्राप्त हो सकती है । मनुष्य निर्भय होकर यहां अपना कर्तव्य करे । विशेष प्रशंसा करने योग्य जो सबसे बडा और सबसे श्रेष्ठ ब्रह्म है, वही महत् अर्थात् सबसे महान है, इसकी प्राप्ति अर्थात् इसकी ब्राह्मी अवस्था साधकको प्राप्त करनी चाहिये, यही सबका आधार, आश्रय अथवा विश्रामका परमस्थान है । यह जो जानता है वह क्षणिक भोगोंमें नहीं रमता । अपना सर्वस्व इस विश्वरूप परमात्माकी सेवाके लिये अर्पण करता है और ऐसा जो करता है वही सच्चा बुद्धिमान कहलाता है ।

(१२) सच्चे बुद्धिमानका लक्षण यमधर्म पुनः अधिक स्पष्ट करते हैं- (दुर्दर्शं) वह ब्रह्म देखनेके लिये कठिन है, सहज ही से वह देखा नहीं जाता, (गूढं अनुप्रविष्टं) सब स्थानमें गुप्त रीतिसे व्याप्त, इस जगत्का निर्माण करके उसमें अनुप्रविष्ट होकर बो रहा है, (गुहाहितं) बुद्धिमें ही रहनेवाली अर्थात् बुद्धिके द्वारा ही जो अनुभवमें आता है, बुद्धिसे ही जिसका ज्ञान होता है, अर्थात्

इन्द्रियोंसे जो संपूर्णतया ज्ञात नहीं होता, (गव्हरेष्ठं पुराणं) अन्तःकरणमें रहनेवाला, गुप्तसे गुप्त स्थानमें रहनेवाला जो पुराण पुरुष है उस (देवं) परमात्म देवको (अध्यात्म-योगाधिगमेन मत्वा) अध्यात्म योगसे जानकर, वह सर्वत्र कैसा है यह जानकर (धीरः हर्षशोकौ जहाति) बुद्धिमान साधक हर्ष और शोकका त्याग करता है, क्योंकि वह इस विश्वमें सर्वत्र एक जैसा सर्वत्र उपस्थित है । इसलिये इष्ट प्राप्तिका हर्ष और अनिष्ट प्राप्तिका शोक करना अनुचित है, क्योंकि दोनोंमें वह एक जैसा ही है । भगवद्गीतामें सुख–दुःख सम करनेका उपदेश भी यही भाव बताता है ।

अध्यात्मयोग वह है जो सर्वाधार परमात्मा है उसे देखकर अपना सर्वांगयोग उससे सदा हो रहा है इसका अनुभव करना । 'सतत-युक्त' होनेका आदेश भगवद्गीताने दिया है वही यहां अनुसंधान करके देखना योग्य है ।

हर्ष होनेसे भी मनुष्य कर्तव्य भ्रष्ट होता है और शोक होनेसे भी कर्तव्य नहीं कर सकता । ये दोनों मनुष्यको कर्तव्य भ्रष्ट करनेवाले हैं अतः इनका त्याग करके मनुष्य सदा कर्तव्य तत्पर रहे, अपना कर्तव्य करे, कभी कर्तव्य भ्रष्ट न होकर सदा अपना कर्तव्य करता रहे ।

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा विवृतं सद्म नाचिकेतसं मन्ये १३
अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥ १४ ॥
सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदँ संग्रहेण
ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१५॥

(मर्त्यः एतत् श्रुत्वा) मनुष्य इसे जानकर, (संपरिगृह्य प्रवृह्य) इसका धारण और मनन करके (एतं अणुं धर्मं आप्य) इस सूक्ष्मज्ञानको प्राप्त करता है (सः मोदनीयं लब्ध्वा मोदते) वह आनन्दके केन्द्रको

पाकर आनन्दित होता है। (नचिकेतसं विवृतं सद्म मन्ये) नचिकेताको मैं इस विद्याका खुला हुआ घर जैसा समझता हूं (१३)॥

नचिकेता कहता है-(धर्मात् अन्यत्र) धर्मसे भिन्न, (अधर्मात् अन्यत्र) अधर्मसे भी भिन्न, (अस्मात कृताकृतात अन्यत्र) इस कर्म और अकर्मसे भी भिन्न (भूतात् च भव्यात् च अन्यत्र) भूत और भविष्यसे भिन्न (यत तत् पश्यसि) जो कुछ तू देखता है (तत् वद) वह मुझे बतला (१४)॥

यम कहता है--(यत् पदं सर्वे वेदाः आमनन्ति) सारे वेद जिस पद-का वर्णन करते हैं, (सर्वाणि च तपांसि यत् वदन्ति) सारे तप जिसको बतलाते हैं, (यत इच्छन्तः ब्रह्मचर्यं चरन्ति) जिसकी इच्छा करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करते है. (तत् पदं ते संग्रहेण ब्रवीमि) उस पदका वर्णन मैं तुझे संक्षेपसे कहता हूं (ओं इति एतत) वह ओं है (१५)॥

(१३) आत्माका जो यह सूक्ष्म स्वरूप है, उसका श्रवण, मनन और निदिध्यासन करके, इसका ज्ञान उत्तम रीतिसे प्राप्त करके जो कुछ प्राप्तव्य है वह उसको प्राप्त होता है और वह अपने ही अन्दर अपने ही आनन्दसे सदा आनन्द प्रसन्न रहता है। यम कहता है कि 'यह नचिकेता ऐसा ही है' (निःसंदेह यह नचिकेताका अन्तःकरण रूपी घर शुद्ध ज्ञानके लिये सदा खुला है। शुद्ध ज्ञान अन्दर जानेके लिये कोई प्रतिबंध नहीं है। नचिकेता ज्ञान ग्रहण करनेके लिये सदा तत्पर है। भोगोंमें न फंसकर ज्ञानके लिये यह तत्पर है। ऐसा यह कुमार नाचिकेता धन्य है।

(१४) धर्म और अधर्म, कृत और अकृत भूत और भव्य, इन सबके, जो परे है, हे यम! जो इनके भी परे तुझे दीखता हो (तत् वद) वह मुझे कह, वह मुझे समझा दे। वह मैं जानना चहता हूं। जो धर्माधर्मसे परे, कृताकृतसे परे, भूतभव्यसे भी जो परे है वह मुझे बता दे।

जगत् में लोग जो धर्म करते हैं वह शाश्वत सुख प्राप्त करनेके लिये करते हैं ओर जो अधर्म करते हैं वे भी उससे सुख प्राप्त होगा ऐसा विचार करके ही

अधर्ममें प्रवृत्त होते हैं, जगत्में कर्मोंको करनेवाले और कर्मोंका त्याग करनेवाले ये दोनों सुखकी अभिलाषा समानरूपसे ही धारण करते हैं, वर्तमान. भूत और, भविष्यमें यह एक मनुष्योंकी प्रेरक शक्ति रही है वह है सुख प्राप्तिकी इच्छा। वह सबको प्रेरणा करती है। अतः यह कह कि इससे परे अर्थात् सच्चा आनन्द, अखण्ड सुख, अथवा परम सुख देनेवाला जो इनसे परे है वह कौन हैं ? उसे मुझे बता दे।

(१५) नचिकेताका यह प्रश्न सुनकर यमने कहा कि सब वेद इसीका वर्णन करते हैं, सब प्रकारके तप इसीकी प्राप्तिके लिये तपे जाते हैं, ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन इसकी प्राप्तिके लिये ही किया जाता है ! वह संक्षेपसे 'ओं' पद है। वेदोंनें भी ओंकारका ही वर्णन किया है, सब तप करके जो प्राप्त होता है वह भी ओंकार ही है, व्रतादि जो किये जाते हैं वे भी इसीके लिये किये जाते है। 'ओं' इसमें सब उत्तर आ गया है

'**ओं इत्येतदक्षरं इदं सर्वं** (मां० उ०) माण्डूक्य उपनिषदमें 'ओं यह अक्षर है और यही यह सब है' ऐसा कहा है। ओंकारका स्वरूप माण्डूक्य उपनिषद्में बताया है वह यहां देखने योग्य है। इस उपनिषद्में भी आगे इसीका विस्तृत वर्णन आयेगा, इसलिये यहां इसका अधिक वर्णन नहीं किया जायगा। आगे यथा स्थान इसका वर्णन करेंगे।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥
एतदालम्बनँ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥
न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे १८

(एतत् हि एव अक्षरं ब्रह्म) यही अक्षर ब्रह्म है। (एतत् हि एव अक्षरं परं) यही अक्षर श्रेष्ठ है। (एतत् हि एव अक्षरं ज्ञात्वा) इस

अक्षर को जान करके (यः यत् इच्छति तस्य तत्) जो जिसकी इच्छा करता है, वह उसका होता है (१६)॥

(एतत् श्रेष्ठं आलंबनं) यह श्रेष्ठ आलंबन है, (एतत् परं आलंबनं) यही उच्च आलंबन है (एतत् आलंबनं ज्ञात्वा) इस आलंबनको जानकर (ब्रह्मलोके महीयते) ब्रह्मलोकमें महत्त्वको प्राप्त होता है (१७) ॥

(अयं विपश्चित् न जायते म्रियते वा) यह ज्ञानी आत्मा न जन्मता है और न मरता है। (अयं कुतश्चित् न बभूव) यह किसीसे उत्पन्न नहीं हुआ और इससे (कश्चित् न) कोई उत्पन्न नहीं हुआ। (अजः नित्यः शाश्वतःपुराणः अयं) अजन्मा, नित्य, शाश्वत और यह पुराण पुरुष (हन्यमाने शरीरे न हन्यते) शरीरके मरनेपर भी यह नहीं मरता (१८)॥

(१६) यह 'ओं' अक्षर ब्रह्म है, अर्थात् अविनाशी ब्रह्मका वर्णन इससे ठीक तरह होता है। यही 'ओं' पर अर्थात् श्रेष्ठ अविनाशी ब्रह्म है। इस 'ओं' कारसे व्यक्त होनेवाले अक्षर अविनाशी ब्रह्मको जाननेसे (यः यत् इच्छति तस्य तत्) जो जिसकी इच्छा करता है, उसको वह मिलता है। अर्थात् पूर्ण रीतिसे वह आप्तकाम वा तृप्त होता है। उसकी सब कामनाएं शान्त हो जाती है और कोई कामना रहती नहीं।

(१७) यह ओंकार श्रेष्ठ आलंबन है और यही ओंकार परम उत्तम आधार है, इस ओंकार रूप आधारको जानकर ब्रह्मकोकमें महत्त्वका स्थान प्राप्त करता है। साधकके लिये ध्यानके लिये अवलम्बन लगता है वह 'ओं' यह अच्छा श्रेष्ठ आलंबन है। 'ओं' कारका उच्चारण विना आयास होता है, किसी अवयवको कष्ट नहीं होता दीर्घ कालतक यह उच्चारा जा सकता है। किसी अन्य शब्दपर ध्यान रखनेकी अपेक्षा इस 'ओं' पर ध्यान जलदी स्थिर हो जाता है। इस शब्दमें मधुरता भी है। चित्त इसमें रमता है, शान्तिका अनुभव करता है। इसलिये योग साधनमें ध्यान धारणामें इसका अधिक महत्त्व है। अन्य सव आलंबनोंसे इसका आलंबन उत्तम है। जो साधनके पश्चात् स्वयं अन्दरसे अनाहत शब्द सुनाई देता है, उसका शब्द और ओंकारका शब्द इनमें साम्य बहुत है। अतः ओंकारका जो महत्त्व है वह ऐसे कारणोंसे माना गया है।

(१८) यह अठारहवां श्लोक गीतामें अ. २।२० में थोडेसे शब्दोंके हेरफेरसे आया है।

गीतामें – 'कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।(२।२०)

कठमें – विपाश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव काश्चित्। (२।१८)

शेष सब शब्द समान है। आगेका एक मंत्र भी गीतामें ऐसा ही आया है। शब्दोंमें हेरफेर अवश्य है। यह आत्मा न जन्म लेता है, न मरता है, यह ज्ञानी है। यह कहां नहीं ऐसा नहीं है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुराण पुरुष है। शरीरका नाश होनेपर भी इसका नाश नहीं होता।

यह आत्मा ओंकारसे बताया जाता है यह इसकी विशेषता है।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥
अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः२०
आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्त मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१ ॥

(हन्ता हन्तुं मन्यते चेत्) यदि हनन करनेवाला समझता है कि मैं इसे मारता हू, (हतः चेत् हतं मन्यते) और मरनेवाला यदि समझता है कि मैं मरा, (उभौ तौ न विजानीतः) दोनों ये नहीं जानते क्योंकि (अयं न हान्ति, न हन्यते) यह न मारता है और न यह मारा जाता है (१९)॥

(अस्य जन्तोः गुहायां निहितः) इस प्राणीकी बुद्धिरूपी गुफामें रहा हुआ (आत्मा अणोः अणीयान्) आत्मा सूक्ष्मसे सूक्ष्म और (महतः महीयान्) बडेसे बडा है (धातु प्रसादात् अक्रतुः वीतशोकः) इंद्रियों-की प्रसन्नतासे निष्काम और शोक रहित बना पुरुष (तं आत्मनः महि-- मानं पश्यति) उस आत्माकी महिमाको देखता है [२०) ॥

(आसीनः दूरं व्रजति) बैठा हुआ ही यह दूर जाता है, (शयानः सर्वतः याति) लेटा हुआ ही यह सब जगह पहुंचता है । (तं मदामदं देवं) उस आनंद युक्त परंतु मदसे रहित देवको (मदन्यः कः ज्ञातुं अर्हति) मुझसे भिन्न कौन भला जानने योग्य है ! (२१) ॥

(१९) हनन करनेवाला यदि समझता है कि मैंने इस आत्माका वध किया, इसके शरीरका वध करनेसे आत्माका वध हुआ, और जो मारा गया वह यदि मानेगा कि मैं मारा गया, मेरे शरीरके वधके साथ मेरा आत्मा भी मारा गया, तो वे दोनों सत्य बात जानते नहीं, न यह किसीको मारता है, नहीं यह किसीके द्वारा मारा जाता है । इसके समान ही गीता २।१९ मे एक श्लोक है। थोडासा शब्दोंमें हेरफेर है बाकी सब शब्द एक जैसे ही हैं।

(२०) प्राणीके अन्तःकरणमें, हृदयमें, बुद्धिमें महान् आत्मा निवास करता है। यह सूक्ष्मसे सूक्ष्म और महानसे महान् है । यह सबमें व्यापता है इसलिये सूक्ष्मसे सूक्ष्म है, सूक्ष्म ही व्याप सकता है । आर यह सबको घेरता है इसलिये यह सबसे महान्, बडेसे भी बडा है । अर्थात् यह सबका एक ही आत्मा है जो सबके अन्दर है और बाहर भी है। (अक्रतुः) निष्काम तथा जो (वीत शोकः) शोक रहित होता है वही (तं पश्यति) इसको देखता है और इंद्रियोंकी प्रसन्नतासे वह अपने आत्माकी महिमाको जानता है । निष्काम भावसे सेवा करनेवाला और सदा चिंता न करनेवाला इस आत्माको जान सकता है। भोगोंमें जो लिपटा होता है और जो सदा चिंतामें मग्न रहता है वह इस आत्माको जान नहीं सकता । (धातुः प्रसादात्) इंद्रियां मन आदि तथा शरीरके जो धातु हैं उनकी प्रसन्नता तब रहती, है जब इनमें वैषम्य नहीं होता, शरीरके आधार भूत धातुओंमें समस्थिति रहती है, उस अवस्थामें इस आत्माकी महती सत्ताका अनुभव होता है । यदि शरीर रोगी रहा, इंद्रियोंमें विकलता आगयी, तो इस आत्माकी शक्ति प्रकट नहीं होती । इसलिये आत्म-साक्षात्कारके लिये शरीरकी नीरोगिता और प्रसन्नताकी आवश्यकता है । जब शरीरकी ऐसी स्वस्थ अवस्था रहती है तभी यह मनुष्य (वीतशोकः) शोक

रहित होता है और (अक्रतुः) निष्काम भी होता है। विषयासक्ति यह एक रोग है. धर्मानुकूल संयम पूर्वक विषय सेवन यह प्रसन्नताका कारण है।

(२१) यह आत्मा शरीर एक स्थानपर स्थिर रहनेपर भी बडा दूर तक जाता है अर्थात् यह सर्व व्यापक होनेसे बडे दूर तकका कार्य कर सकता है। सोता हुआ भी सर्वत्र जाता है, ऐसा यह आत्मा है। शरीरकी मर्यादा इस आत्माको मर्यादित कर नहीं सकती। यह दिव्य आत्मा (मद-अमदं) आनन्द मय और निरानन्द ऐसा दोनों अवस्थाओंमें होता है। इसके ही कारण जन्म तथा मृत्यु होते हैं, इसी तरह परस्पर विरुद्ध अवस्थाएं भी इसीके कारण होती है। यद्यपि सूर्यसे प्रकाश और छाया होती है, पर सूर्य उससे अलिप्त ही रहता है इसी तरह आनन्द और आनन्दरहित ये दोनों अवस्थाएं भी इस आत्माके कारण होती हैं, तथापि यह उनके साथ कोई संबंध रखनेवाला नहीं क्योंकि यह द्वन्द्वातीत है।

अनेकोंमें एक आत्मा

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २२ ॥
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥२३
नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥२४॥

(अशरीरं शरीरेषु) वह शरीर रहित है, परंतु सब शरीरोंमें व्याप रहा है, (अनवस्थेषु अवस्थितं) अस्थिरोंमें भी स्थिररूपसे रहा है, उस (महान्तं विभुं आत्मानं मत्वा) महान् व्यापक आत्माको जानकर (धीरः न शोचति) धीर पुरुष शोक नहीं करता (२२) ॥

(अयं आत्मा प्रवचनेन लभ्यः न) यह आत्मा व्याख्यानसे साक्षात् नहीं हो सकता. (न मेधया) न मेधासे और नहीं (बहुना श्रुतेन) बहुत व्याख्यान सुननेसे साक्षात् हो सकता है। (एषः यं एव वृणुते) यह

जिसको स्वयं वरता है (तेन लभ्यः) वही उसे पा सकता है। क्योंकि (एषः आत्मा तस्य स्वां तनूं वृणुते) यह आत्मा उसके शरीरको अपने शरीरके समान स्वीकारता है (२३) ॥

(दुश्चरितात् अविरतः) जो दुष्कर्मसे पीछे हटा नहीं है, (अशान्तः) जो अशान्त है, (असमाहितः) जो समाधि नहीं लगा सकता, (अशान्त मानस वा अपि) जो शान्त मनवाला है, वह केवल (प्रज्ञानेन एनं न अवाप्नुयात्) प्रज्ञानसे ही इसे प्राप्त नहीं कर सकता (२४) ॥

(२२) (शरीरेषु अशरीरं अवस्थितं) अनेक शरीरोंमें शरीररहित एक आत्मा रहता है, तथा (अनवस्थेषु अवस्थितं) स्थायी न रहनेवाले अनेक शरीरोंमें एक स्थायी आत्मा रहता है । यह आत्मा महान है, विभु है, यह सब शरीरोंमें एक है। इसको बुद्धिमान पुरुष जानता है और शोकसे दूर होता है।

यहां जिस आत्माका वर्णन है वह अनेक शरीरोंमें एक है । नश्वर शरीरोंमें शाश्वत रहनेवाला है, मर्यादित शरीरोंमें अमर्याद है । शान्त शरीरोंमें यह विभु है । बुद्धिमान पुरुष इसको जानता है और शोकको दूर रखता है । इस आत्मज्ञानीको किसी तरह शोक नहीं होता।

(२३) केवल प्रवचन सुननेसे इस आत्माका साक्षात्कार नहीं होता, केवल मेधाबुद्धिको बढानेसे इसका अनुभव नहीं होता, केवल बहुत प्रवचन सुननेसे अर्थात् बहुश्रुत होनेसे भी आत्मज्ञान नहीं होता। (यं एष वृणुते तेन लभ्यः) जिसको यह वरता है उसको यह मिलता है (एष आत्मा तस्य स्वां तनूं वृणुते) यह आत्मा उसके शरीरको अपना शरीर करके स्वीकार करता है, अर्थात् उस शरीरमें यह अपनी शक्तिसे प्रकट होता है।

वेद, प्रवचन, अध्ययन आदि साधनोंका जो यहां निषेध किया है वह सापेक्ष है । ये सब साधन निःसंदेह हैं, पर अन्ततक ये उपयोगी नहीं होते । देखिये वेदके मंत्रोंने जो उपदेश दिया है उसका ज्ञान शाब्दिक ही है, प्रवचनसे होनेवाला ज्ञान भी शाब्दिक ही है। बहुश्रुत होना भी शाब्दिक ही है । शब्दका ज्ञान कुछ मर्यादा तक ले जाता है । देखिये ' चावल पकानेसे भात बनता है और

उसके खानेसे पुष्टि होती है ' ये शब्द हैं। इन शब्दोंसे न भात बनेगा नहीं पुष्टी होगी। इसके पश्चात् किसीने बताना चाहिये कि चावल ऐसे पकाने, उसका भात ऐसा होता है इ० यह ज्ञान, सप्रयाग ज्ञान, शब्दज्ञानसे अधिक श्रेष्ठ है। शब्दज्ञानकी मर्यादा छोटा हे, उससे परे अनुभवजन्य ज्ञानका क्षेत्र है। यह बतानेके लिये यहां कहा है कि यह आत्मा प्रवचनसे नहीं मिलता आदि।

जिस एकनिष्ट भक्तपर यह कृपा करता है उसका शरीर यह अपनाता है और उसमें यह प्रकट होता है। इसलिये साधकको उचित है कि वह इसकी भक्ति करे, सेवा करे, इसके वेदादिमें वर्णन जाने और सत्संगसे ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करे। वेद उपानिषद् आदिग्रंथोंमें जो उसका वर्णन है, यद्यपि वह शाब्दिक है तथापि वह अवश्य मार्ग दर्शन करनेवाला है।

यह आत्मा प्रेमका सागर है, इसलिये अनन्य भक्तको वह निःसंदेह अपनाता है और जिसको वह अपनाता है उसका शरीर उसी आत्माका शरीर बनता है। साधक अनन्यभक्ति करे और वह उसकी भक्ति व्यर्थ चली जाय ऐसा कभी नहीं होता। वह उस अनन्य भक्तके शरीरमें स्वभावसे ही प्रकट होता है। उसको अनुभव होता है कि विश्वात्मा मेरे अन्दर प्रकट हुआ है। वह विश्वात्मभावसे बोलता और अन्यान्य कार्य करता है।

(२४) जो दुराचारसे पीछे नहीं हटता, अर्थात् दुराचार करता ही जाता है संयम नहीं रखता, भोगोंमें फंसता जाता है, जो अशान्त है, जिसके मनमें शान्ति नहीं है, जिसमें समाधान नहीं है, जिसका मन अशान्त रहता है, चञ्चल रहता है वह केवल अपने प्रचण्ड बुद्धिसे ही इस आत्माको प्राप्त नहीं कर सकेगा।

पर जा दुराचार नहीं करता, जो भोगोंसे निवृत्त होता है, जो संयमी है, जिसका मन शान्त और चित्त प्रसन्न रहता है, जो समाधान वृत्तिका है वह अपनी बुद्धिसे इसको जान सकता है। अर्थात् यह अनुष्ठान है जिससे साधक योग्य होता है और उसमें आत्माका प्रकाश हो जाता है।

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

(यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च) जिसका ब्राह्मण और क्षत्रिय (उभे ओदनः भवतः) अन्न हुए हैं. और (मृत्युः यस्य उपसेचनं) मृत्यु जिसका मिचंमसाला बना है, (इत्था सः कः वेद) ऐसा वह कहां है यह कौन जानता है (२५) ॥

द्वितीय वल्ली समाप्त

(२५) जिस आत्माका भोजन ब्राह्मण और क्षत्रिय है मृत्यु जिसकी चटणी उस भोजनके साथ खानेके लिये है, यह आत्मा जहां रहता है उसको कौन साधारण अज्ञानी मानव जान सकता है ? अज्ञानी इसको नहीं जान सकता।

विश्वात्माका यह वर्णन है, ब्राह्मग ज्ञानक्षेत्रमें कार्य करते हैं, और क्षत्रिय राष्ट्ररक्षाका कार्य करते हैं । इसी तरह अन्य वर्ण अन्य कार्य राष्ट्रमें करते हैं । ये सब इस आत्माका अन्न है । आत्मा इनको खाता है, ये सब मानव इस आत्माके लिये समर्पित हो रहे हैं । इस आत्माकी भूख इतनी है कि ब्राह्मग क्षत्रियोंको, तथा सब विश्वको यह खा जाता है, मृत्यु उसकी साग भाजी या चटणी है । ऐसा विश्वव्यापने वाला यह आत्मा है । इसके सामने यह विश्व ऐसा है जैसा भोजन करनेवालेके सामने भात । यही सबका भोक्ता है । उपनिषदोंमें इसी आत्माको ‘ भोक्ता ’ कहा है । यही सबका भोग कर रहा है । इसी भोक्ताका वर्णन इस मन्त्रमें है ।

प्रथम अध्याय

तृतीया वल्ली

ऋतं पिन्बतौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः १
यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतँ शकेमहि ॥ २ ॥
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥

(ये पञ्चाग्नयः त्रिणाचिकेताः च ब्रह्मविदः) जो पञ्चाग्निसाधन करनेवाले तीनो नाचिकेत अग्नियोंको प्रदीप्त करनेवाले ब्रह्मज्ञानी हैं, वे (सुकृतस्य लोके) पुण्य लोकमें (ऋतं पिबन्तौ) अमृतको पीनेवाले (गुहां प्रविष्टौ) बुद्धिमें प्रविष्ट हुए (परमे परार्धे) उच्चस्थानमें विराजमान हुए (छयाऽऽतपौ वदन्ति) आत्मा परमात्माको छाया और प्रकाश कहते हैं ॥ (१) (यः ईजानानां सेतुः जो याजकोंका सेतु है, जो (तितीर्षतां अभयं पारं) जो तैरनेवालोंके लिये निर्भय किनारा है, उस (नाचिकेतं) नाचिकेत अग्निको और (यत् अक्षरं परमं ब्रह्म)जो अक्षर श्रेष्ठ ब्रह्म है उसको जाननेमें हम (शकेमहि) समर्थ हों ॥ (२) (आत्मानं रथिनं विद्धि) आत्माको रथी जान, (शरीरं रथं एव तु) शरीरको रथ समझ, (बुद्धिं तु सारथिं विद्धि) बुद्धिको सारथी मान और (मनः प्रग्रहं एव च) मनको लगाम समझ ॥ (३)

(१) जो पञ्चाग्नि साधन करनेवाले, पञ्च प्राणरूप पञ्च अग्नियोंकी प्राणायाम द्वारा साधना करनेवाले जो कर्मयोगी हैं, तथा जो नाचिकेत अग्नि जो बुद्धिमें रहता है उसको मातापिता आचार्य द्वारा प्रदीप्त करनेवाले जो ज्ञानयोगी हैं, तथा जो ब्रह्मज्ञानी है, जिन्होंने ब्राह्मी स्थिति प्राप्त की है ये कहते हैं कि जो (परमे परार्धे) परम उच्च स्थानमें विराजमान होनेवाले तथा (गुहां प्रविष्टौ)

बुद्धिमें प्रविष्ट होकर रहनेवाले (सुकृतस्य लोके ऋतं पिबन्तौ) अपने अपने सुकृतके लोकमें रहकर अमृतरसका पान करनेवाले जीवात्मा और परमात्मा हैं वे (छाया-आतपौ) छाया और प्रकाशके समान हैं ।

कर्मयोगी, ज्ञानयोगी और ब्रह्म साक्षात्कारी ये सब जीवात्मा और परमात्माको क्रमशः छाया और प्रकाश कहते हैं । छाया प्रकाशसे बनती है, सूर्य प्रकाश न रहा तो छाया भी नहीं रहेगी । छायाका अर्थ अन्धकार नहीं । अन्धकार तो प्रकाशका पूर्ण अभाव है । छायामें प्रकाश रहता है पर अपूर्णता वहाँ रहती है । छाया उत्पन्न होनेका कारण हटाया गया तो वहां भी प्रकाश ही होता है । छाया प्रकाशके कारण उत्पन्न होनेवाली है । यहां छायाका अर्थ जीवात्मा है । परमात्मा स्वयं प्रकाशी है । वह स्वयं प्रकाश है, जीवात्मा उस प्रकाशके कारण बनी छाया है ।

भगवद्गीतामें (मम एव अंशः जीवलोके जीव भूतः । गीता. १५) जीवको परमात्मा अंश कहा है और यहां छायारूप कहा है । प्रकाश स्वरूप परमात्मासे बननेका भाव यहां है अन्यत्र जीवात्माको अग्निकी चिनगारियाँ कहा है । इस सबका तात्पर्य यह है कि जीव अल्प है । परमात्मा महान है, पर दोनों समान गुण धर्मवाले हैं अर्थात् जीव भी ब्राह्मीस्थिति प्राप्त कर सकता है जो ब्रह्मके गुण धारण करनेसे हो सकती है । छाया भी कभी न कभी प्रकाश रूप होगी, आज भी उस प्रकाशसे ही वह बनी है । छाया अन्धकार तो नहीं है जो प्रकाशका अभाव हो । छाया तो अल्प प्रकाशवाली है और प्रकाश पूर्ण प्रकाशवाला है अर्थात् यह भेद अल्प प्रकाश और पूर्ण प्रकाशका भेद है । ये जीव और परमात्माके स्वरूप हैं ।

यहां इनको (सुकृतस्य लोके ऋतं पिबन्तौ) पुण्यलोकमें रहकर अमृत रसका पान करनेवाले करके कहा है । जीवात्मा ब्राह्मीस्थितिमें अमृत पान करता है, पूर्ण आनन्दका भोग प्राप्त करता है । यही उसका सुकृत या स्वकृतके स्थानमें निवास है ।

ये दोनों परम उच्च स्थानमें रहते हैं और मनुष्योंकी (गुहां प्रविष्टौ) बुद्धिमें

प्रविष्ट होकर रहते हैं। इसका विवरण आगे आनेवाला है (मंत्र ४ देखो)। वेदमें अन्यत्र—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाय समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नयो अभि चाकशीति॥

(ऋ. १।१६४।४६)

' दो सुंदर पक्षी परस्पर मित्र हैं और वे एक वृक्षपर बैठे हैं, उनमें एक उस वृक्षका मीठा फल खाता है और दूसरा प्रकाशता रहता है। ' यहां दोनों फल खाते हैं ऐसा नहीं कहा। परमात्मा फलभोक्ता नहीं है। ऐसा होते हुए भी इस उपनिषद् वचनमें दोनोंको रसपान करनेवाले कहा है। इसका अर्थ यह है कि परमात्मा स्वयं आनन्द स्वरूप है और जीवात्मा ब्राह्मी अवस्थामें आनन्द स्वरूप होता है। अर्थात् ब्राह्मी अवस्थामें दोनों आनन्दका अनुभव लेते हैं। परमात्माका आनन्द सहज प्राप्त है और जीवात्माका अनुष्ठानसे साध्य है। इस तरह ये दोनों आनन्दका अनुभव लेते हुए बुद्धिमें रहते हैं।

(२) जो (ईजानानां सेतुः) कर्म योगियोंको पार लेजानेवाला सेतु है, तथा जो (तितीर्षतां अभयं पारं) तैरकर पैल तीरपर जाना चाहते हैं उनके लिये निर्भय पैलतीर है उस नाचिकेत अग्निको जो कि बुद्धिमें है हम जाननेमें समर्थ हों और उससे परम अक्षर ब्रह्मको भी जाननेमें हम समर्थ हों। हमें अक्षर ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त करना है, उसके लिये साधन बुद्धिमें रहनेवाला ज्ञानरूप अग्नि ही है जो माता-पिता-आचार्य द्वारा प्रदीप्त किया जाता है। जिससे कर्म मार्ग और ज्ञानमार्गका आचरण होता है और अन्तमें दुःखसे पार जाकर वहां अक्षर ब्रह्मका अनुभव किया जाता है। यह सब हम कर सकें। हमारे अनुष्ठानमें किसी तरह विघ्न न हो।

रथ और रथी

(३) जीवात्मा (आत्मानं रथिनं विद्धि) रथमें बैठनेवाला रथका स्वामी वीर है, (शरीरं रथं) शरीर उस वीरका रथ है ऐसा समझ। बुद्धिं (सारथिं विद्धि) बुद्धि सारथी है जो इस शरीररूपी रथको चलाती है, (मनः प्रग्रहं) मनको लगाम समझ।

इस तरह है ऐसा समझ लो। रथमें बैठनेवालेको अपना मार्ग आक्रमण करना है और उसके ये साधन हैं। यह प्रथम समझ लो जिससे पता लग जायगा कि अपनेको प्रथम क्या करना चाहिये। आगे और देखो—

इन्द्रियाणि हयान्याहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ ४ ॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥ ५ ॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥ ६ ॥

(इन्द्रियाणि हयानि आहुः) इन्द्रियोंको घोडे कहते हैं, (तेषु विषयान् गोचरान्) उनमें विषयोंको उन घोडोंके मार्ग कहते हैं। (आत्मा-इन्द्रिय-मनो युक्त) आत्मा जब इंद्रिय और मनके साथ युक्त होता है, तब उसको (मनीषिणः भोक्ता इति आहुः) बुद्धिमान पुरुष भोक्ता कहते हैं॥(४) (यः तु सदा अयुक्तेन मनसा) जो तो सदा अयोग्य मनसे युक्त तथा, (अविज्ञानवान् भवति) ज्ञानरहित होता है (तस्य इन्द्रियाणि अवश्यानि) उसके इन्द्रिय वशमें नहीं रहते हैं (सारथेः दुष्टाश्वा इव) जैसे सारथीके दुष्ट घोडे वशमें नहीं रहते (५)॥ (यः तु विज्ञानवान् भवति) जो विज्ञानवाला होता है, (युक्तेन मनसा सदा) और जिसका मन सदा संयमित रहता है, (तस्य इन्द्रियाणि वश्यानि) उसके इन्द्रिय उसके स्वाधीन रहते हैं (सारथेः सदश्वा इव) जैसे सारथीके स्वाधीन उत्तम शिक्षित घोडे रहते हैं ॥ (६)

(४) (इंद्रियाणि हयानि आहुः) इस शरीररूपी रथके घोडे ये सब इंद्रियां हैं, ये घोडे (विषयान् गोचरान्) विषय तो उन घोडोंके मार्ग हैं। आत्मा--इंद्रिय और मनसे युक्त होनेपर उनको ज्ञानी लोग भोक्ता कहते हैं।

आत्मा जब मनसे युक्त होकर नेत्रसे संबंध करता है, तब वह रूपका भोग लेता है, इसी तरह कानसे संबंध करके शब्दका भोग लेता है। इसी तरह अन्यान्य इंद्रियोंसे संबंध करके अन्यान्य विषयोंका भोग करता है। इस तरह आत्मा मन तथा इंद्रियोंसे युक्त होता है तब वह 'भोक्ता' होता है। विना मन-इंद्रियोंके संबंधके आत्माको भोक्ता नहीं कहते, क्योंकि विना इस संबंधके वह स्वयं किसीका भोग ले ही नहीं सकता।

अशिक्षित घोडोंका रथ

(५) जो विज्ञानसे रहित है, जिसका मन स्वाधीन नहीं है, उसके इंद्रिय उसके वशमें नहीं रहते, अतः उसकी अवस्था अशिक्षित उच्छृंखल घोडोंके रथके समान होती है। जिस रथको ऐसे आशिक्षित उच्छृंखल उन्मत्त तथा स्वाधीन न रहनेवाले घोडे जोते हों, उस रथका क्या बनेगा यह सब जानते ही हैं। वह रथ किसी गढेमें गिर जायगा, तथा उस रथमें बैठनेवाला रथी भी उसके साथ गढेमें गिर जायगा और अपने इष्ट स्थानमें नहीं पहुंचेगा। इसलिये रथ उसके घोडे तथा उसका सारथी सबका सब अच्छा शिक्षित और संयम-शील चाहिये। तभी उसमें बैठनेवाला स्वामी इष्ट स्थानपर पंहुच सकता है।

शिक्षित घोडोंवाला रथ

(६) जो विज्ञानवान् होता है, जिसका मन संयमशील होता है, उसके इन्द्रिय वशमें रहते हैं जैसे उत्तम शिक्षित घोडे सारथीके वशमें रहते हैं। जिस रथी वीरके पास उत्तम रथ है, जिसका सारथी बडा चतुर है और जिस रथको शिक्षित तथा वशमें रहनेवाले घोडे जोते हैं, वह रथ इष्ट स्थानमें रथी वीरको पंहुचा देता है। इससे स्वामीको आनन्द मिलता है। यही बात और विस्तारसे आगे बताते हैं—

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥७॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ ८॥
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९॥

(यः तु अविज्ञानवान् अमनस्कः सदा अशुचिः भवति) जो अज्ञानी, असंयमी और सदा अपवित्र होता है, (सः तत् पदं न आप्नोति) वह उस परम पदको प्राप्त नहीं होता, परंतु (संसारं च अधिगच्छति) संसार चक्रमें घूमता रहता है॥(७) (यः तु विज्ञानवान् समनस्कः सदा शुचिः भवति) जो ज्ञानी संयमी और सदा पवित्र रहता है, (सः तु तत् पदं आप्नोति) वह उस परम पदको प्राप्त करता है (यस्मात् भूयः न जायते) जहांसे वारंवार नहीं जन्मता है ॥ (८) (यः तु विज्ञान-सारथिः) विज्ञान जिसका सारथी है, (मनः-प्रग्रहवान् नरः) मन जिसके हाथमें लगाम जैसे हैं, (सः अध्वनः पारं आप्नोति) वह मार्गके पार पहुँचता है, (तत् विष्णोः परमं पदं) वही विष्णुका परम पद है (९) ॥

(७) जो (अविज्ञानवान् भवति) जो विज्ञानसे युक्त नहीं है, (अ-मनस्कः) मनका संयमी नहीं और (सदा अशुचिः) सदा अपवित्र आचरण करता है वह उस श्रेष्ठ पदको प्राप्त नहीं कर सकता और अनेक (संसारं अधि-गच्छति) दुःख परंपराको प्राप्त करता है ।

(८) जो विज्ञान प्राप्त करता है, (समनस्कः) मनसे संयमी होता है और सदा पवित्र आचरण करता है, वह उस श्रेष्ठ पदको प्राप्त करता है जहांसे उसे वारंवार दुःख भोगना नहीं होता ।

(९) जिसकी बुद्धि विज्ञानवती होती है और ऐसी बुद्धि (विज्ञान-सारथिः) जिसकी सारथी होती है, तथा (मनः प्रग्रहवान्) मनके लगाम जिसने हाथमें पकडे होते हैं वह ऐसे रथमें बैठकर अच्छी तरह मार्गके पार होता है और विष्णुके परम पदको प्राप्त करता है ।

मन्त्र ३ से ९ तकके सात मंत्रोंमें जो उपदेश किया है उसका अर्थ यह है कि शरीर रथ है, उसको इंद्रियोंके जोडे जोते हैं, इस रथका सारथी बुद्धि है और मन लगाम घोडोंके साथ लगे हैं । इस रथमें आत्मा यह वीर इस रथका स्वामी बैठा है । इस उपमाका अर्थ यह है कि यदि आत्माका प्रवास सुखसे होना चाहिये और उसने विष्णुपदतक सुखसे पहुंचना है, तब तो यह सिद्ध है कि शरीररूपी रथ अच्छी अवस्थामें होना चाहिये, सब लकडियाँ, गदेले और जो भी खम्बे आदि होंगे वे सब उत्तम अवस्थामें होने चाहिये, टूटे फूटे, कीडे मकोडोंसे खाये, जंग चढे नहीं होने चाहिये । बुद्धि विज्ञानवती चाहिये, ज्ञान विज्ञान-से संस्कारवती चाहिये, मन उत्तम चाहिये और स्वाधीन तथा संयमशील चाहिये, सब इंद्रियाँ स्वाधीन, शुभ संस्कार युक्त और संयममें रहनेवाली चाहिये । संपूर्ण शरीर, इंद्रियाँ, मन, बुद्धि आदि सब निर्दोष नीरोग, हृष्ट पुष्ट, बलवान, आशिष्ठ दृढिष्ठ और बलिष्ठ चाहिये । किसी तरह इनमें कोई दोष नहीं होना चाहिये । यदि ऐसा होगा तभी यह रथी वीर आत्मा विष्णुके परमपदको सुखसे प्राप्त कर सकेगा । यदि इनमें दोष होंगे तो उसको न तो वह परमपद प्राप्त होगा और नहीं मार्गमें सुख होगा ।

भोगोंमें फंसना नहीं चाहिये यह सत्य है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि शरीरके स्वास्थ्यकी ओर दुर्लक्ष्य हो । ऐसा कदापि नही होना चाहिये ।(शरीर) इंद्रियाँ, मन, प्राण, बुद्धिका स्वास्थ्य उत्तम रहना चाहिये । ये हमारे साधन हैं वे उत्तम अवस्थामें रहने चाहिये । योगसाधन इसीलिये है यह भूलना नहीं चाहिये । नीरोग शरीर, प्रसन्न मन, विज्ञानमयी बुद्धि, शिक्षित और स्वाधीन इंद्रियां होनी चाहिये । रहन सहन अच्छा चाहिये । रहनेका घर, उसके बाहरका उद्यान, ग्राम, नगर राष्ट्र आदि सब ऐसा चाहिये कि जहां नीरोगता और प्रसन्नता रहती हो । यह सब उत्तम सुचारु राज्यव्यवस्थासे ही हो सकता है । इन ७ मंत्रोंनें बडा भारी उत्तरदायित्व मनुष्योंपर रखा है । इसीसे तो इस भूमिपर स्वर्गका सुख निर्माण होना है । यह तो विना योग्य प्रबंधके नहीं हो सकती ।

ॐ

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ १० ॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः ॥११॥
एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥१२॥

(हि इन्द्रियेभ्यः अर्थाः पराः) निःसंदेह इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ हैं, (अर्थेभ्यः च मनः परं) विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, (मनसः तु बुद्धिः परा) मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, (बुद्धेः आत्मा महान् परः) बुद्धिसे परे महान् आत्मा अर्थात् महत्तत्त्व है (१०) ॥ (महतः परं अव्यक्तं) महत्तत्वसे अव्यक्त प्रकृति श्रेष्ठ है,(अव्यक्तात् पुरुषः परः) अव्यक्त प्रकृतिसे पुरुष श्रेष्ठ है, (पुरुषात् किंचित् परं न) पुरुषसे श्रेष्ठ कुच्छ भी नहीं है, (सा काष्ठा, सा परा गतिः) वह सीमा है और वही परम गति है (११)॥ (एषः सर्वेषु भूतेषु गूढः आत्मा न प्रकाशते) यह सब पदार्थोंमें गुप्त आत्मा है, यह बाहर दीखता नहीं। (सूक्ष्म दर्शिभिः अग्र्या सूक्ष्मया बुद्ध्या दृश्यते) सूक्ष्मदर्शी लोग तीक्ष्ण और सूक्ष्म बुद्धिसे उसे देखते हैं (१२) ॥

(१०-११) इन्द्रियोंसे विषय श्रेष्ठ हैं, विषयोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे महत्तत्त्व अर्थात् अहं प्रत्यय (मैं पनका भाव) श्रेष्ठ है, महत्त-त्वसे अव्यक्त मूल प्रकृति श्रेष्ठ है, इस अव्यक्त मूल प्रकृतिसे पुरुष अर्थात् परमात्मा श्रेष्ठ है। इस पुरुषसे और कुछ भी श्रेष्ट नहीं है । वह परिसीमा है और वही श्रेष्ठ गति है। गीता ३।४२ में यही वर्णन थोडे हेर फेरसे है तथा अन्य स्थानोंमें उपनिषदोंमें तथा अन्यत्र भी आता है। थोडा थोडा वर्णनमें हेरफेर अवश्य है, पर वह शब्दका फेर है। वस्तुमें हेर फेर नहीं है।

यहां १ इन्द्रिय- २ अर्थ, विषय- ३ मन- ४ बुद्धि- ५ महत्तत्त्व- ६ अव्य-क्त प्रकृति- ७ पुरुष वा परमात्मा ये सात पदार्थ गिनाये हैं। यहां जीवात्माकी

पृथक् गणना नहीं की है। पुरुषमें जीवात्मा-परमात्माकी गणना हुई है। अथवा छाया-प्रकाशवत् जीवात्मा-परमात्मा एकहीके रूप माने हैं। यहां सबका प्राप्तव्य 'पुरुष' है, यही पराकाष्ठा, परा गति, परमगति है। इसको प्राप्त करनेके लिये शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धि ये सब स्वस्थ चाहिये। बाहरके विषय भी अच्छी अव-स्थामें चाहिये। वे कैसे भी रहे तो कार्य ठीक नहीं होगा। देखिये जिव्हा इंद्रिय है, उसका विषय रस अथवा जल है। यह जल निर्दोष पवित्र शुद्ध और निर्मल रहना चाहिये। यदि जल सदोष हुआ तो उससे अनेक रोग होंगे। इसी तरह अन्यान्य विषयोंके संबंधके विषयमें सोचना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि संयम रखना है, विषयोंको अपने आधीन रखना चाहिये। इसका आशय यह नहीं है कि इस जगत्के विषयका अपना कर्तव्य ही भूलना है। साधकका उत्तरदायित्व बढता है यह यहां हमने बताया है।

(१२) यह परमात्मा एक है और वह अेक होता हुआ (सर्वेषु भूतेषु गूढः) सब भूतोंमें व्याप्त है परंतु (न प्रकाशते) बाहर प्रकाशता नहीं अर्थात् बाहर दीखता नहीं है। वह सूक्ष्म बुद्धिसे दीखाई देता है। सूक्ष्मदर्शी लोग अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे इसे देखते हैं। स्थूल बुद्धिके लोगोंको यह नहीं दखिता।

सबको इसके देखनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। योग-साधनका मार्ग बुद्धी सूक्ष्म करनेके लिये ही है। इसके साधनसे बहुत लोगोंको यह दीख सकेगा।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत् तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥१३॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात् प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

(प्राज्ञः वाक् मनसि यच्छेत्) बुद्धिमानको उचित है कि वह अपनी वाणीको मनमें संयमित करे, (तत् ज्ञाने आत्मनि यच्छेत्) और उस मनका ज्ञानरूप आत्मामें अर्थात् बुद्धिमें संयम करे (ज्ञानं महति आत्मनि नियच्छेत्) बुद्धिका महत्तत्त्वमें संयम करे । (तत् शान्ते आत्मनि यच्छेत् और उसका शान्त आत्मामें संयम करे (१३) ॥ (उत्तिष्ठत जाग्रत) उठो! जागो! (वरान् प्राप्य निबोधत) और श्रेष्ठ आचार्योंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो । (क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया) छुरेकी तेज धारा जैसी तेज होनेसे चलनेके लिये कठिन है, (कवयः तत् दुर्गं पथः वदन्ति) उस तरह ज्ञानी लोग उस मार्गको दुर्गम बतलाते हैं (१४)॥ (अशब्दं अस्पर्शं अरूपं अरसं) वह शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, रसरहित, (अगन्धवत् च यत् नित्यं) गन्धरहित, नित्य तथा (अव्ययं) व्यय रहित है, (अनादिअनन्तं महतः परं ध्रुवं) अनादि, अन्तरहित, महत् से भी श्रेष्ठ, और ध्रुव है, (तत् निचाय्य मृत्यु मुखात् प्रमुच्यते) उस ब्रह्मतत्त्वको जानकर मृत्युके मुखसे साधक छूट जाता है (१५)॥

(१३) साधक वाणीका संयम मनसे करे, मनको संयमित करके ज्ञानात्मा अर्थात् बुद्धिमें स्थिर करे । बुद्धिका संयम करके उसको महत्तत्त्वमें स्थिर करे और उसका शान्त आत्मामें संयम करे । १ वाणी– २ मन– ३ ज्ञानात्मा, विज्ञानमयी बुद्धि– ४ महत्तत्त्व, महान आत्मा– ५ शान्त आत्मा यह क्रम संयमका यहां दिया है । वाणी आदि इंद्रियोंका मनसे संयम, मनका विज्ञानमयी बुद्धिसे संयम, बुद्धिका अहं प्रत्ययसे अथवा महत्तत्त्वसे संयम, और अहं प्रत्ययका पुरुषसे संयम करना चाहिये । जो तत्त्व उच्च है उससे निम्नश्रेणीके तत्त्वका संयम करना चाहिये । यह साधन मार्ग है । बुद्धिसे मनका संयम, इस तरह अनुष्ठानका मार्ग निश्चित करना चाहिये ।

उठो जागो ! ज्ञान प्राप्त करो ।

(१४) (उत्तिष्ठत, जाग्रत) उठो, जागो ! (वरान् प्राप्य निबोधत) श्रेष्ठ ज्ञानियोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। विना ज्ञानके यहां कुछ भी उन्नति साध्य नहीं

हो सकती। यह आत्मज्ञानका और आत्मोन्नतिका मार्ग (तत् दुर्गं पथः) बडा कठिन और बिकट है। जिस तरह तलवारकी तीक्ष्ण धारापर चलना कठिन है वैसा यह मार्ग कठिन है। सब ज्ञानी इस मार्गका ऐसा ही वर्णन करते आये हैं। यहां पथ्य ठीक तरह संभालना चाहिये। थोडासा अपथ्य हुआ तो पतन हो जाता है। सदा सावधान रहना चाहिये। उठो और जागते रहो, यहां सोनेसे कार्य नहीं चलेगा।

(१५) वह ब्रह्म (अशब्दं अस्पर्श) शब्दसे वर्णन न होनेवाला, तथा स्पर्शसे जिसका ज्ञान नहीं हो सकता, (अरूपं अव्ययं) जिसका कोई रूप नहीं और जिसका व्यय नहीं होता अर्थात् जिसमें न्यूनाधिक नहीं होता, (अरसं अगंधवत्) जो रस और गंधसे रहित है, अर्थात् इसका रस मनुष्यकी जिव्हा नहीं ले सकती और इसका कोई गन्ध नहीं है जो नाकसे सूंघा जा सकता है, अर्थात् पञ्चज्ञानेंद्रियोंसे इसका ग्रहण नहीं हो सकता। (अनादि अनंतं महतः परं ध्रुवं) आदि तथा अन्त जिसके नहीं है, जो महत्तत्त्वके परे है और जो वहां निश्चल है। इस आतमाका साक्षात्कार करनेसे साधक मृत्युसे मुक्त हो जाता है। इस आत्माका ग्रहण किसी भी एक इंद्रियसे नहीं हो सकता। ऐसा यह अग्राह्य है, परंतु सबसे जो अनुभव होता है वही एक आत्मा है। किसी एक इंद्रियसे संपूर्णतया आत्माका ग्रहण नहीं होता, परंतु सबसे जो अनुभूति होती है वह आत्माकी अनुभूति है।

यहां एक उदाहरण दिया जाता है। एक हाथी था, उसको देखनेके लिये पांच अन्धे गये, जिसने पांव देखा उसने कहा कि हाथी खंबे जैसा है, दूसरा कानको स्पर्श करके कहने लगा कि हाथी छज जैसा है, तीसरा दूमको पकडकर कहने लगा कि हाथी संबल जैसा है, चौथा पेटको स्पर्श करके कहने लगा कि यह कपासकी बोरी जैसा हैऔर पांचवा सोंडको स्पर्श करके कहने लगा कि यह अजगर जैसा है। पांचोंका अनुभव सत्य था, परंतु वह अपूर्ण था। पांचोंके अनुभव एक स्थानपर मिलानेसे सब अनुभव एकत्र किये जांय तो वह हाथी ही होगा। इसी तरह इंद्रियाँ जिसका अनुभव कर रहीं हैं वह विश्वरूप सर्वव्यापक आत्मा ही है जो सब भूतोंमें है और जिसके कारण सब भूत यथास्थान रहे हैं।

परंतु एक एक इंद्रिय जो अनुभव ले रहा है वह उसके एक अंशका अनुभव है, संपूर्णका नहीं । सबका मिलकर अनुभव यदि लिया जाय, अर्थात् सब इंद्रियों, मन बुद्धि आदिका भी जो सब अनुभव है वह अनुभव इकठ्ठा किया जाय तो वह विश्वरूप आत्माका ही अनुभव है । क्योंकि यहां 'नाना' कुछ भी नहीं है (कठ २।१।९-१०) सब एक ही वस्तु है ऐसा आगे कहनेवाले हैं । अर्थात् जो एक वस्तु है वही आत्मा है और उसीका अनुभव अंशतः इंद्रियाँ लेती हैं। संपुर्णतया नहीं ले सकती क्योंकि उनमें वह शक्ति नहीं ।

इससे इस मंत्रका अर्थ यह हुआ कि " यह आत्मा केवल शब्द ही नहीं, केवल स्पर्श नहीं, केवल रूप नहीं, केवल रस नहीं, केवल गन्ध नहीं। " यह सब अनुभव उसीका है, पर सब मिलकर है ।

पुरुषके शरीरको दायी और बायी बाजू होती है। केवल दायी बाजू उसका शरीर नहीं और केवल बायी बाजू भी उसका शरीर नहीं, शरीर तो केवल दायी बाजूसे भी श्रेष्ठ है और केवल बायी बाजूसे भी वरिष्ठ है। अर्थात् दायी और बायी बाजू मिलकर जो होता है वह किसी एक बाजूसे श्रेष्ठ है ही । इसी तरह जो सब अनुभूतिका अखण्ड विषय है वह किसी एक इंद्रियके अनुभवसे श्रेष्ठ है ही । इसका सत्यज्ञान होनेसे मृत्युका भय दूर हो जाता है। क्योंकि खण्डभावसे मृत्यु होता है अमर्याद अखण्ड सत्ता होनेपर वहां मृत्यु ही नहीं होती । अतः इसके ज्ञानसे मृत्यु भय दूर होता है ।

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तꣳसनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥१६॥
य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद्ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदाऽऽनन्त्याय कल्पते ।
तदाऽऽनन्त्याय कल्पत इति ॥१७॥

(मृत्यु प्रोक्तं सनातनं) मृत्युके द्वारा उपदेश जिसका हुआ है ऐसी सनातन (नाचिकेतं उपाख्यानं) नचिकेताकी यह कथा (उक्त्वा श्रुत्वा

च) कहने और सुननेसे साधक (मेधावी) बुद्धिमान होकर (ब्रह्मलोके महीयते) ब्रह्मलोकमें महिमाको प्राप्त होता है (१६) ॥ (यः इमं परमं गुह्यं ब्रह्म-संसदि श्रावयेत्) जो इस परम गुह्य तत्त्वज्ञानको ज्ञानियोंकी सभामें सुनायेगा, (प्रयतः श्राद्धकाले वा) शुद्ध होकर श्राद्धके समय सुनाएगा, वह (तदा आनन्त्याय कल्पते) अनन्त फलके लिये योग्य होगा (१७) ॥

(१६) यह मृत्युका उपदेश नाचिकेत उपाख्यान सुननेसे मनुष्य बुद्धिमान होता है और ब्रह्मलोकमें महत्वसे विराजता है ।

(१७) जो ब्राह्मणोंकी सभामें इस गुह्य ज्ञानका प्रवचन करेगा अथवा श्राद्ध समयमें इसका विवरण करेगा वह अनन्तत्वको प्राप्त होगा, मुक्तिको प्राप्त होगा । अनन्त होनेका नाम मुक्ति है ।

॥ यहां तृतीय वल्ली समाप्त ॥

॥ यहां प्रथम अध्याय समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्त-
रात्मन् ।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥
पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते २ ॥
येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥ ३ ॥

(स्वयंभूः खानि पराञ्चि व्यतृणत्) स्वयंभु परमात्माने इन्द्रियोंको बहिर्मुख बनाया है । (तस्मात् पराङ् पश्यति, न अन्तरात्मन्) इस कारण मनुष्य बाहरकी ओर देखता है, अन्दरके आत्माको नहीं देख

सकता। (कश्चित् धीरः अमृतत्वं इच्छन्) कोई बुद्धिमान् पुरुष अमृतत्व-की इच्छा करता हुआ (आवृत्त-चक्षुः प्रत्यगात्मानं ऐक्षत) अपने चक्षु आदि इन्द्रियोंका संयम करके अन्तरात्माको देखता है (१) ॥ (बालाः पराचः कामान् अनुयन्ति) मूढ मनुष्य इन बाह्य उपभोगोंके पीछे दौडते हैं। (ते विततस्य मृत्योः पाशं यन्ति) वे मृत्युके फैले हुए पाशमें जाकर गिरते हैं। (अथ धीराः अमृतत्वं विदित्वा) पर ज्ञानीलोग अमृतत्वकी इच्छा करके (इह अध्रुवेषु ध्रुवं न प्रार्थयन्ते) यहां अनित्य पदार्थोंमें उस नित्य आनन्दको प्राप्त करनेकी आकांक्षा नहीं करते (२) ॥ (येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शान् च मैथुनान् एतेन एव विजानाति) जिससे मनुष्य रूप रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श तथा मैथुन आदि विषयको जानता है और जो (अत्र किं परिशिष्येत) यहां कुछ पीछे रहता है उसको भी जानता है (तत् एतत् वै) वही यह आत्मा है (३) ॥

अमर आत्मा

(१) स्वयंभू परमात्माने इंद्रियोंको बहिर्मुख बनाया है, अतः इन्द्रियाँ बाहेरके पदार्थोंको देखती हैं, पर वे अन्दरको नहीं देख सकती। इसलिये इन्द्रियोंसे सब बाह्य विश्वका दर्शन तो होता है, पर अन्तरात्माका दर्शन नहीं होता। परंतु कचित् कोई (धीरः) बुद्धिमान पुरुष (अमृतत्वं इच्छन्) अमरत्व प्राप्त करनेकी इच्छासे (आवृत्त-चक्षुः) अपने नेत्र आदि इंद्रियोंका संयम करता है और (प्रत्यगात्मानं ऐक्षत्) प्रत्येक मनुष्यके अन्दर जो अन्तरात्मा रहता है उसको, अर्थात् अपने अन्दरके अन्तरात्माको देखता है।

यहां अन्तरात्माका दर्शन करनेका अनुष्ठान दिया है। इंद्रियोंको स्वाधीन करना, कच्छुवा जैसे अपने अवयव अन्दर खींचता है, वैसे ही अपनी इंद्रियोंको स्वाधीन करना, इनको स्वैर वृत्तीसे भटकने नहीं देना यह पहिला अनुष्ठान है। जिस समय इंद्रियोंका बाहेरका व्यापार बंद होता है, उस समय मनको भी रोकना होता है। जब मनका व्यापार स्तब्ध होजाता हैं, उस समय अन्तर्मन जागृत होता है और अन्तरात्माकी शक्तिका अनुभव होने लगता है। दिव्य शब्द श्रवण, दिव्य रूप दर्शन, दिव्य रसानुभव आदि आन्तरिक अनुभव होते हैं। ये

अनुभव आन्तरिक शक्तियोंके हैं, वाह्य विषयोंके ये अनुभव इस समय नहीं हैं। क्योंकि बहिर्मनके साथ सब इंद्रियां इस समय स्तब्ध रहती हैं और अन्तर्मन ही अपना कार्य करता है। वाह्य जाग्रतिमें कार्य करनेवाला मन जब स्तब्ध होता है तभी यह अन्तर्मन जाग्रत होता है और दिव्य अनुभव उस समय होने लगते है। मनके ऊपरकी बुद्धिका यह क्षेत्र है।

जिसको अमरत्वका अनुभव लेना है, उसको यह अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। इससे अनेकोंमें सर्वत्र व्यापक एक आत्मा है और वह देशकाल मर्यादा-से बाहर है इसका ज्ञान होता है, स्थलकालान्तरित दर्शन इस समय होता है और उसका निश्चय होता है कि यही एक ही एक सर्वान्तर्यामी आत्मा है। यही अमरत्व है।

अमरत्वका अर्थ देहकी मृत्यु नहीं होती ऐसा नहीं है। सब ऋषि मुनि मर गये हैं। उनकी अमरता आत्माके सर्व व्यापकत्वके अनुभवमें होती है जो प्रत्येक साधकको प्राप्त हो सकती है। देह तो मरनेवाला है ही, देह अमर नहीं हो सकता। अपने अन्तरात्माके अमरत्वका अनुभव साधक इस अनुष्ठानसे कर सकता है।

(२) मूढ मनुष्य ही वाह्य विषयोंके पीछे पडते हैं, वे विषय थोडा समय रहनेवाले और पश्चात् विनष्ट होनेवाले होते हैं। अपने अन्दर भूख हो तो ही वाह्य अन्न आनन्द दे सकता है। भूख न रही तो वाह्य अन्न किसीको भी आनन्द नहीं दे सकता। इस तरह ये वाह्य विषय स्थायी शाश्वत सुख दे ही नहीं सकते। ऐसे ये सुखेच्छु लोग मृत्युके विस्तीर्ण पाशमें जकडे जाते हैं। परंतु जो बुद्धिमान होते हैं, अमृतत्वकी प्राप्तिका ध्येय अपने सामने रखते हैं और वे (अध्रुवेषु ध्रुवं न प्रार्थयन्ते) यहांके अनित्य और अशाश्वत विषयोंसे शाश्वत आनन्द प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं करते। क्योंकि वैसा होना असंभव है।

अज्ञ मनुष्य ही मानते हैं कि विषय भोगोंका संग्रह अपने पास करनेसे अपनेको अखण्ड आनन्द मिलेगा। पर ऐसे यत्नोंमे वे अपना समय गमाते हैं और फंसते हैं।

(३) गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द तथा मैथुनसे प्राप्त होनेवाला सुख और जो भी कुछ अवशिष्ट रहता है वह भी इसी अनुष्ठानसे विदित होता है। यह जो है वही वह है, हे नचिकेता! तूने जो पूछा वह यही है।

जिससे नाकसे गन्धका अनुभव मिलता है, जिव्हा जिसकी शक्तिसे रस ग्रहण करती है, नेत्र जिसकी शक्तिसे रूप देखते हैं, त्वचा स्पर्श सुख अनुभवती और कान शब्दोंको सुनते हैं, मैथुनका सुख जिससे अनुभवमें आता है और भी जो कुछ अनुभव होता है वह जिसकी शक्तिसे होता है वही आत्मा है जो नचिकेताने पूछा था।

यही आत्मा है जो अनेकोंमें एक है और बुद्धि मनके साथ रहकर भोग लेता है अतः इसको 'भोक्ता' कहते हैं। (देखो १।३।४)। यही वह है कि जो नचिकेताने पूछा था।

स्वाप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥ ४॥
य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत्॥ ५॥
यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत। एतद्वै तत्॥ ६॥

(स्वप्नान्तं जागरितान्तं च उभौ येन अनुपश्यति) निद्रावस्था और जागृत अवस्था इन दोनों अवस्थाओंको जिससे देखता है उस (महान्तं विभुं आत्मानं मत्वा) महान् विभु आत्माको जानकर (धीरः नशोचति) बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करता (४)॥ (यः इमं मध्वदं जीवं आत्मानं अन्तिकात् वेद) जो इस मधुर रसको पीनेवाले जीव आत्माको समीपस्थितसा देखता है तथा (भूतभव्यस्य ईशानं) वह भूत भविष्यका स्वामी है ऐसा भी जानता है, (ततः न विजुगुप्सते) जिससे वह किसीका तिरस्कार नहीं करता। (एतत् वै तत्) यही वह है (५)॥ (यः पूर्वं

तपसः जातं) जो पहिले तपसे प्रकट हुआ, जो (पूर्वं अद्भ्यः अजायत) पहिले जलोंसे प्रकट हुआ। तथा (गुहां प्रविश्य भूतेभिः तिष्ठन्तं यः व्यपश्यत) जो बुद्धिमें प्रवेश करके भूतोंके साथ रहनेवालेको देखता है। (एतत् वै तत्) यह है वह (६) ॥

(४) स्वप्न अर्थात् निद्राका अन्त जाग्रति और जागरित स्थितिका अन्त निद्रा (उभौ) ये दोनों अवस्थाएं हैं। इनका (अनुपश्यति) अनुभव जो करता है और जिससे इनका अनुभव होता है उस (महान्तं विभुं आत्मानं मत्वा) महान व्यापक आत्माका विचार करके (धी-रः न शोचति) बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करता। शोकसे मुक्त होता है।

जाग्रतिके पश्चात् निद्रा और निद्राके पश्चात् जाग्रति मनुष्यको आती रहती है। इन दोनों अवस्थाओंका अनुभव लेनेवाला आत्मा एक है और वह महान् विभुं है, वह सबमें व्याप्त है, वही अनेकोंमें वसनेवाला एक है, वही सबका आत्मा है। इसके जाननेसे शोक करनेका कारण नहीं रहता क्योंकि यह सर्व व्यापक है ऐसा जाननेसे एक शरीरका नाश होनेसे उस सर्वव्यापकका नाश नहीं हो सकता यह तो उसका निश्चय ही हो जाता है और आत्मनाशका भय उसका दूर होता है।

(५) जो साधक (इमं मध्वदं जीवं आत्मानं अन्तिकात् वेद) इस मीठा फल खानेवाले जीवात्माको समीपसे जानता है। और इसको भूत भविष्यका स्वामी मानता है। इससे वह किसीका तिरस्कार नहीं करता। तिरस्कार उसका होता है कि जो दूसरा है। सबका आत्मा एक होनेसे यहां कोई दूसरा रहता ही नहीं। इसलिये वह किसीका तिरस्कार कर ही नहीं सकता। महान विभु एक आत्मा जैसा मुझमें है वैसा ही वह सब अन्योंमें है। ऐसा समत्व भाव जिसके अनुभवमें आजायगा, वह किसको दूर कर सकता है और किसका कैसा तिरस्कार भी कर सकता है!

यह आत्मा भूत वर्तमान और भविष्यका स्वामी है। यही बुद्धि और मनके साथ मिलनेसे भोक्ता जीव (मध्वदं=मधु+अदं) मीठा फल भोगता है। यह

सर्वव्यापक होनेसे इसको ज्ञानी लोग समीप स्थित जैसा देखते हैं और सबकी आध्यात्मिक दृष्टीसे एकता देखते हुए किसीको भी दूर नहीं करते, किसीकी भी निंदा या किसीका तिरस्कार नहीं करते।

(एतत् वै तत्) यही आत्मतत्त्व वह है कि जो नचिकेताने पूछा था।

(६) जो तपसे पहिले उत्पन्न हुआ जो जलके पहिले प्रकट हुआ अर्थात् जो इस प्रकाश और इस जलके पहिले ही प्रकाशित हो रहा है। जो बुद्धिमें प्रवेश करके रहता है और जो (भूतेभिः व्यपश्यत) भूतोंके साथ अर्थात् भूतोंसे उत्पन्न हुए इंद्रियोंके द्वारा जो सबको देखता है वह है वह आत्मतत्त्व जिसके विषयमें नचिकेताने प्रश्न पूछा था।

यह आत्मा बुद्धिमें (भूतेभिः) भूतोंसे उत्पन्न हुए इंद्रियोंके साथ रहता है। इसीको बुद्धि-मनके साथ रहनेके कारण भोक्ता कहते हैं, यह इंद्रियोंके साथ सब विश्वका दर्शन करता है। यह आत्मतत्व है जो नचिकेताने मरणोत्तर रहता है वा नहीं ऐसा प्रश्न पूछकर जाननेकी इच्छा की थी। वही यह है।

या प्राणेन सम्भवत्यादितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत। एतद्वै तत् ॥ ७ ॥
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः।
एतद्वैतत् ॥ ८ ॥
यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत् ॥ ९ ॥

(या देवतामयी अदितिः प्राणेन संभवति) जो देवतामयी अदिति प्राणके साथ उत्पन्न हुई है, (गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं) और बुद्धिमें प्रविष्ट होकर स्थिर हुई है (या भूतेभिः व्यजायत) जो भूतोंके द्वारा अनेक रूपोंमें प्रकट होतीहै। (एतत् वै तत्) यही वह है (९) ॥ (अरण्योः जातवेदाः निहितः) दो अरणियोंके अन्दर जातवेद अग्नि छिपा

हुआ है। (गर्भिणीभिः सुभृतः गर्भ इव) गर्भवती स्त्रियोंमें जैसा गर्भ सुरक्षित रहता है। यही (अग्निः) अग्नि (जागृवद्भिः हविष्मद्भिः मनुष्येभिः) जागनेवाले तथा हवि अर्पण करनेवाले मनुष्योंद्वारा (दिवे दिवे ईड्यः) प्रतिदिन पूजनीय है। (एतत् वै तत्) यही है वह (८)॥ (यतः सूर्यः उदेति) जिससे सूर्यका उदय होता है और (यत्र च अस्तं गच्छति) जहां अस्तको जाता है. (तं सर्वे देवाः अर्पिताः) उसमें सब देवताएं प्रोए हैं (कश्चन तदु न अत्येति) कोई भी उसका उल्लंघन नहीं करता।) एतत वै तत्) यही है वह (९)॥

(७) एक (देवता मयी अदितिः) दैवी शक्तियोंके साथ रहनेवाली, अपने साथ अनेक या तंतीस दैवी शक्तियोंको रखनेवाली, सबको खानेके लिये अन्न देनेवाली (अदितिः अदनात्) एक अन्नदायक शक्तिमयी देवता है। जो (प्राणेन संभवति) प्राणके साथ प्रकट होती है। प्राणके साथ रहनेसे जीव सृष्टी उत्पन्न होती है। यह (गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं) बुद्धिमें प्रविष्ट होकर वहां रहती हैं और (या भूतेभिः व्यजायत) जो भूतोंसे उत्पन्न हुए इंद्रियोंके साथ प्रकट होती है। इस मंत्रका द्वितीय अर्थ पूर्व षष्ट मन्त्रके समान ही है, थोडा हेरफेर है। इसालिये पूर्व मंत्रका स्पष्टीकरण यहां देखने योग्य है । यही वह आत्मतत्त्व है।

(८) दो लकडियोंके घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होता है जो घर्षणसे पूर्व उन लकडियोंमें व्यापक रहता है। गर्भवती स्त्रियोंमें जैसा गर्भ सुराक्षित रहता है, वैसा ही लकडियोंमें अग्नि रहता है। सदा जागनेवाले तथा हवि अर्पण करनेवाले मनुष्योंको इस अग्निकी पूजा करना योग्य है। इसी तरह सर्वत्र व्यापक जो आत्मतत्त्व है वह भी साधकोंको सदा सत्कार करने योग्य है यही आत्मतत्त्व वह है जो मरणोत्तर रहता है, यह शरीरके साथ विनष्ट नहीं होता।

(९) जिसकी शक्ति लेकर सूर्य उदय होता है और जिसकी शक्तिसे सूर्यका अस्त होता है, जिसके आधारसे सब सूर्यादि देवता यथास्थान रहते हैं, और जिसकी आज्ञाका उल्लंघन कोई कर नहीं सकता, वही आत्मा शरीरके नाश होनेपर भी रहता है शरीरके नाशसे उसका नाश नहीं हो। वही वह है।

नानात्वका अभाव

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥
मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥ ११ ॥
अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥ १२ ॥

(यत् इह तत् एव अमुत्र) जो यहां है वही वहां है और (यत् अमुत्र तत् अनु इह) जो वहां परलोकमें है वही यहां इस लोकमें है। (यः इह नाना इव पश्यति) जो यहां अनेक भेद देखता है (सः मृत्योः मृत्युं आप्नोति) वह एक मृत्युके पश्चात् दूसरे मृत्युको प्राप्त होता है (१०)॥ (इह किंचन नाना न अस्ति) यहां कुछ भी भेदभाव नहीं है, (इदं मनसा एव आप्तव्यं) यह मनसे जानना चाहिये। (यः इह नाना इव पश्यति) जो यहां अनेक भेद देखता है (सः मृत्योः मृत्युं आप्नोति) वह एक मृत्युके पश्चात् दूसरे मृत्युको प्राप्त होता है (११)॥ (भूत-भव्यस्य ईशानः अंगुष्टमात्रः पुरुषः) भूत और भविष्यका स्वामी अंगुष्ट-मात्र पुरुष (आत्मनि मध्ये तिष्ठति) अपने अन्तःकरणमें अन्दर रहता है, (ततः न विजुगुप्सते) इसको जाननेवाला पुरुष किसीकी निन्दा नहीं करता। (एतत् वै तत्) यही वह है (१२)॥

एक तत्त्वका अभ्यास

(१०) जो यहां इस भूलोकमें है वही वहां द्युलोकमें है। जो वहां द्युलोकमें है वही यहां भूलोकमें है। भूलोक, अन्तरिक्ष लोक तथा द्युलोकमें सर्वत्र अनुस्यूत एक जैसा ब्रह्म अथवा आत्मा भरा है। किसी स्थानपर न्यून वा अधिक नहीं है। द्युलोकसे परे भी यही एक ब्रह्म तत्त्व भरा है। इससे भिन्न कुछ भी यहां नहीं है।

एक आत्मतत्त्व अर्थात् ब्रह्म सर्वत्र है। (यः इह नाना इव पश्यति) जो यहां अनेक पदार्थ परस्पर विभिन्न हैं ऐसा मानता है वह मृत्युके वश होता है । यहां जो स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, अथवा शरीर, इंद्रियां, मन (बाह्य और आन्तर), बुद्धि, महत्तत्त्व, अव्यक्त, आत्मा इतने पदार्थ गिनाये हैं वे विभिन्न वस्तु दर्शक नहीं हैं। एकके ही वे विभिन्न जैसे दीखनेवाले रूप हैं। एकही ब्रह्म तत्त्व दृश्य और अदृश्य, स्थूल और सूक्ष्म रूप होकर दीख रहा है।

द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च। (बृ० उ० २)

ब्रह्मके दो रूप हैं, मूर्त ब्रह्म और अमूर्त ब्रह्म। दृश्य अदृश्य, साकार निराकार, व्यक्त अव्यक्त ये एकहीके रूप है। (न इह नाना अस्ति किंचन) भूलोकसे द्युलोक तथा उसके बाद भी कहीं अनेक पदार्थ नहीं हैं। सब एकही आत्मा भर कर रहा है। और सब रूप उसीके हैं। यहां (न इह नाना अस्ति) यह वाक्य १० और ११ इन दो मंत्रोंमें दो वार आया है। यह द्विरुक्ति एकत्वके दृढी-करणार्थ आगयी है।

(११) साधकको उचित है कि वह (मनसा एव इदं आप्तव्यं) अपने मनकी मनन शक्तिसे निश्चित करके देखे और समझे कि (इह किंचन नाना नास्ति) यहां कुच भी नाना करके नहीं हैं, विभिन्न पदार्थ नहीं हैं। यह मनसे मनन करके जानना चाहिये। जो यहां विभिन्न वस्तुएं हैं ऐसा मानता है वह मृत्युके वश होता है। अर्थात् सब एक ही वस्तु है, यहां अनेक विभिन्न पदार्थ नहीं हैं ऐसा माननेसे मृत्युकी बाधा दूर हो जाती है और अनेक विभिन्न पदार्थ यहां हैं ऐसा माननेसे मृत्युका भय होता है।

ईशोपनिषद्में " **तत्र को मोहः कः शोक एकत्वं अनुपश्यतः।** " (ईश) एकत्व देखनेवालेको शोकमोह नहीं होते, दुःख नहीं होता ऐसा कहा है। इस सबका तात्पर्य यही है कि इस विश्वमें अन्दर और बाहर सब एकही वस्तु है और वह ब्रह्म है अथवा आत्मा है यह प्रथम मनके द्वारा मनन करके जानना चाहिये। यही मुख्य बात है। इस दृष्टीसे ये दोनों मन्त्र मननीय हैं।

प्रत्येक मनुष्य यहां विविध पदार्थ देखता है। ये विविध पदार्थ नहीं हैं और ये सब पदार्थ एकहीके रूप हैं, यह यहां कहा है। इसका ठीक ठीक ज्ञान होना सर्व साधारण मनुष्यके लिये कठिन है। पर मन्त्र कहता है कि अपने मनसे विचार करके समझो कि यहां नाना पदार्थ नहीं है और एकही पदार्थ यहां है और उसकेही ये अनेक रूप हैं।

आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी, पृथ्वीसे औषधि, औषधीसे अन्न, अन्नसे वीर्य वीर्यसे, मनुष्यादि प्राणी यह उत्पत्तिका क्रम उपनिषदोंमें वर्णन किया है, यहां भी एकही आत्माके ये रूप हैं ऐसाही कहा है। घनी भवनका क्रम वहां दर्शाया है। जैसा बाष्प, जल और बर्फ एकही जल तत्त्वके तीन रूप हैं, उसी तरह यहां भी समझना चाहिये। इस कठ उपनिषदका यही मुख्य कथन है कि यहां एकही एक तत्त्व है, एक तत्त्वाभ्यास करना चाहिये ऐसा जो कहा है वह यही है।

(१२) भूत और भविष्यका स्वामी (अंगुष्ठमात्रः पुरुषः) अंगुष्ठ मात्र पुरुष (आत्मनि मध्ये तिष्ठति) अपने अन्दर रहता है। अपने अन्तरात्मामें, अन्तःकरणमें रहता है। हृदयपर हाथ रखनेसे जो दधुक् होती है वह अंगुष्ठ मात्र दिखाई देती है। यही अंगुष्ठ मात्र पुरुष है। यही भूत भविष्यका स्वामी है। यही शरीर चलाता है। शरीरका सृजन करके उसमें यही प्रविष्ट हुआ है। **(तत् सृष्ट्वा तदेव अनुप्राविशत्।)** इस शरीरको उत्पन्न करके उसीमें प्रविष्ट होकर यह रहा है। जो इसको जानता है वह किसीकी निंदा नहीं करता, किसीको दूर नहीं करता, किसीका तिरस्कार नहीं करता। सम बुद्धिसे, एकत्व भावनासे सबकी ओर देखता है। यही समबुद्धि, यही एकत्व दर्शन साधकको होना चाहिये। यही मनमें अथवा जीवमें सुदृढ होना चाहिये। द्वन्द्व भाव दूर होना चाहिये और निर्द्वन्द्व भाव किंवा द्वन्द्वातीत स्थिति होनी चाहिये। यह जो एक तत्त्व है वही वह है। यह जो विश्व है वही वह तत्त्व है।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः। एतद्वै तत्॥ १३॥
यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानु विधावति॥ १४॥
यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम॥ १५॥

(भूतभव्यस्य ईशानः अंगुष्टमात्रः पुरुषः) भूतभविष्यका स्वामी अंगुष्टमात्र पुरुष (अधूमकः ज्योतिः इव) धूमरहित ज्योतिके समान है, (स एव अद्य सः उश्वः) वह जैसा आज है वैसा वही कल भी रहेगा। (एतत् वै तत्) यही वह है (१३)॥ (यथा उदकं दुर्गे वृष्टं) जैसा जल पर्वत-शिखर पर बरसा हुआ (पर्वतेषु विधावति) पहाडियोंपर सब और दौडता है, (एवं धर्मान् पृथक् पश्यन्) इस तरह पदार्थोंके पृथक् पृथक् धर्मोंको देखनेवाला (तान् एव अनु विधावति) उन्हींके पीछे दौडता रहता है (१४)॥ (यथा उदकं शुद्धे शुद्धं आसिक्तं) जैसा शुद्ध जल शुद्ध जलमें डालनेपर (तादृग् एव भवति) वैसाही शुद्ध रहता है, हे (गौतम) नचिकेता! (एवं विजानतः मुनेः आत्मा भवति) इस तरह विज्ञानसंपन्न मुनिका आत्मा सदा एकरस रहता है (१५)॥

(१३) अंगुष्ट मात्र पुरुष है, वह धूम रहित ज्योतिके समान है। वही भूत भविष्यका स्वामी है। वह जैसा आज है वैसाही कल होगा। वह जैसा कल था, वैसाही आज है और वैसाही कल रहेगा। यहां स्मरण रहे कि इस जगत्में कल आज और कलमें पदार्थोंमें बदल होता है। कल जो फूल अच्छा प्रफुल्ल दीखता था वही कल निस्तेज हो जाता है। ठीक रहता नहीं। यह सब जगत्की ऐसीही अवस्था है। पकाया अन्न एक दिनमें सडता है। इस तरह सबका विपरिणाम हो जाता है। पर यह मंत्र कहता है कि ब्रह्म दृष्टीसे वह जैसा कल था वैसाही कल या परसो वैसाही वह ब्रह्म रहेगा। इसमें विपरिणाम नहीं होगा।

यही ब्रह्म वह है। जो ब्रह्म है वही यह सब है। निःसंदेह यही वह ब्रह्म है।

❀

(१४) जैसा पर्वतपर वृष्टीका जल गिर गया तो नीचे दौडता है और विविध नदी नालोंमें जाकर नाना रूप धारण करता है, यमुनामें गया तो यमुना जल, गंगामें जानेसे गंगाजल कहाता है। पर सब जल एकही वृष्टीका जल होता है। इसी तरह यहां एकही वस्तु-एकही आत्म तत्त्व है जो नाना रूपोंमें नाना रूप बना है, उस एक वस्तुकी ओर एकत्व दृष्टिसे वस्तुतः देखना चाहिये, परंतु वैसा न देखते हुए (पृथक् धर्मान् पश्यन्) जो विविध वस्तुओंकी ओर उनके नाना गुण धर्मोंकी दृष्टीसे देखता है, वह वहां सदा पृथक् भाव देखता है और इस कारण (तान् एव अनु विधावति) वह द्वन्द्व भावके पीछे दौडता रहता है, द्वन्द्व भाव, भिन्न भाव, वैरभाव, युद्ध भावके पीछे दौडता है और अनेक युद्धोंमें फंसकर विनष्ट होता है। इसलिये एकत्व दर्शन करना चाहिये।

(१५) जैसा वृष्टीका शुद्ध जल किसी तालावमें गिरा तो उसके शुद्ध जलमें वह मिल जाता है, शुद्ध जलमें शुद्ध जल मिल कर एकही शुद्ध जल हो जाता है, उसमें किसी तरह विभिन्नता नहीं रहती, वैसाही साधक मुनीके लिये यह एकही आत्मा सर्वत्र एकरसही प्रतीत होता है। उसमें किसी तरह नानात्व नहीं दीखता। यही योग्य दृष्टी है, यही दिव्य दृष्टी है, और यही शुद्ध सत्य दृष्टी है।

हे नचिकेता यह दिव्य दृष्टि है। इसका धारण कर। नानात्व दृष्टीको दूर कर।

॥ यहां द्वितीय अध्यायकी प्रथमवल्ली समाप्त ॥
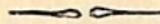
द्वितीयोऽध्यायः ।

द्वितीया वल्ली ।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति, विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वै तत् ॥ १ ॥
हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्
॥ २ ॥

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥ ३ ॥

(अवक्रचेतसः अजस्य एकादशद्वारं पुरं) जिसका चित्त तेढा नहीं है ऐसे अजन्मा आत्माका ग्यारह द्वारोंवाला यह नगर है । यहां (अनुष्ठाय न शोचति) अनुष्ठान करनेसे यह शोक नहीं करता और (विमुक्तः च विमुच्यते) मुक्त होकर बन्धनसे छूट जाता है । (एतत् वै तत्) यही वह है (१) ॥ वह (हं सः=अहं सः) मैं वह हूं ऐसा मानता है, (शुचिषत्) शुद्ध स्थानमें रहता है, (वसुः) सबका निवासक, (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्षमें रहनेवाला, (होता) दाता, (वेदिषत्) वेदीपर बैठनेवाला, (अतिथिः) भ्रमण करनेवाला, (दुरोणसत्) घरमें रहनेवाला, (नृषद्) मनुष्योंमें रहनेवाला, (वर सत्) श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाला, (ऋतसद्) सत्यमें निवास करनेवाला, (व्योमसद्) आकाशमें रहनेवाला, (अब्जाः) जलोंमें प्रकट होनेवाला, (ऋतजाः) सत्य नियमोंको प्रकट करनेवाला, (अद्रिजाः) पर्वतमें होनेवाला, ऐसा आत्मा (बृहन् ऋतं) यह एक महान सत्य है (२) ॥ (प्राणं ऊर्ध्वं उन्नयति) प्राणको यह ऊपर ले जाता है, (अपानं प्रत्यक् अस्यति) अपानको यही नीचे फेंकता है । (विश्वे देवाः मध्ये आसीनं वामनं उपासते) सब देव मध्यमें बैठनेवाले इस उपासनीय देवकी पूजा करते हैं (३) ॥

(१) जिसका चित्त सरल है ऐसे अजन्मा आत्माका यह ग्यारह द्वारोंवाला नगर है। इसके ग्यारह द्वार ये हैं—दो आंख, दो नाक, दो कान, एक मुख, गुद द्वार, मूत्र द्वार, नाभी और मस्तकका ब्रह्मरन्ध्र। ये ग्यारह द्वार हैं। यहनगरी है, इसके बाहर यह दुर्ग, कीला है जिसकी दिवारमें ये ग्यारह द्वार हैं।

(अनुष्ठाय न शोचति) अनुष्ठान करनेसे अनुष्ठान कर्ता शोकसे मुक्त होता है और विमुक्त होकर दुःखसे छूट जाता है। इस नगरीका जो अधिष्ठाता है वही वह आत्मा है जो देह विनष्ट होनेपर अवशिष्ट रहता है। यही वह है।

सुरक्षित नगरी

यहां शरीरको कीलेकी उपमा दी है, नगर रचनाका यहां उपदेश है। नगर ऐसे बनाने चाहिये कि जिसके चारों ओर पक्की दिवार हो, कीलेका प्राकार हो, उसमेंसे बाहर जाने और अन्दर आनेके लिये आवश्यक द्वार हों। यह कीला सुदृढ हो कि शत्रु इसमें किसी तरह न घुस सके। अभेद्य नगरी होनी चाहिये। खुले नगर होंगे तो शत्रु एकदम आकर लूट मार कर सकेगा। यदि कीला अच्छा बलशाली होगा, अभेद्य होगा तो शत्रुका प्रवेश अन्दर नहीं होगा और अन्दर रहनेवाले नागरिक सुखसे अपने व्यवहार कर सकेंगे। वहां अनेक प्राकार भी हों तो अच्छा है। कई नागरीय कीलोंपर सात प्राकार होते हैं और उन दीवारोंपर तोफें आदि संरक्षक साधन भी होते हैं। वैसे इस शरीरमें भी हैं। स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, सूर्य, सहस्रार आदि अनेक चक्र यहां इस शरीररूपी नगरीमें हैं। ये चक्र शरीरकी सुरक्षा करते हैं।

यहां जो अनुष्ठान है वह इस नगरीका संपूर्ण अधिकार अपने हाथमें लेनेका अनुष्ठान है। मैं इस नगरीका अधिपति हूं और यह मेरा स्वराज्य है, अतः यहां मेरी आज्ञाके अनुसार सब कार्य होना चाहिये। यहां किसी दूसरेका आधिपत्य नहीं हो सकेगा। मैं जैसा चाहूं वैसाही यहां होना चाहिये। इसकी सिद्धताके लिये शरीर, इंद्रियां, मन, बुद्धिपर अपना प्रभुत्व स्थापन होना चाहिये, इनको स्वाधीन रखना चाहिये, इनको योग्य धार्मिक नियमोंके अनुसारही चलाना चाहिये। इसका

अर्थ यह नहीं है कि इनको कृश और निर्बल बनाना चाहिये । इनको अच्छी तरह कार्यक्षम रखना चाहिये । क्योंकि जो कुछ पुरुषार्थ करना है वह इनके द्वाराही करना चाहिये । ये साधन क्षीण निर्बल और निकम्मे बने तो कुछ भी पुरुषार्थ नहीं हो सकेगा । अतः सुदृढ शरीर, कार्यक्षम और कर्म कुशल इंद्रियां, मनन कर सकनेवाला मन, विज्ञानवर्ती बुद्धि होनी चाहिये । यह एक बडा भारी राष्ट्रीय शिक्षाविभागका कार्यक्रमही है । यह किसी अकेलेसे होनेवाला कार्य नहीं है । यह एक राष्ट्रीय योग है और वह राष्ट्रभरमें राष्ट्रशक्तिके द्वाराही चलाना चाहिये । इतने बडे प्रमाणमें यदि यह कार्य होगा तभी तो इस अनुष्ठानका फल दिखाई देगा । जो मानते हैं कि यह अनुष्ठान किसी एक व्यक्ति द्वारा होगा, वे भ्रममें हैं। व्यक्ति अनुष्ठान करके लाभ उठा सकती है, पर व्यक्तिके यशकी मर्यादा अल्पही है । विशेषतः नगर या राष्ट्रके प्रमाणमें यह अनुष्ठान होगा, और ऐसे अनुष्ठानसे राष्ट्रभर अच्छा वायु मण्डल बनेगा, तो उससेही सच्चा लाभ हो सकता है।

व्यक्तिकी उन्नति होनी चाहिये, पर समाजकी उन्नति अथवा राष्ट्रकी उन्नति करनेका प्रयत्न होगा, तो उसका परिणाम अधिक अच्छा होगा । जब तक ग्राम स्वच्छ नहीं होगा, तब तक एक घर स्वच्छ करनेका प्रयत्न उतना लाभदायक नहीं होगा जितना सामूहिक पवित्रता करनेके प्रयत्नसे लाभ होगा । इसालिये यह अनुष्ठान सामूहिक है यह भूलना नहीं चाहिये । आज तक वैयक्तिक अनुष्ठान बहुत होता रहा, उससे लाभ भी हुआ । पर जितना लाभ सामूहिक अभ्युत्थानसे होगा, उतना वैयक्तिक और बिखरे प्रयत्नोंसे कदापि लाभ नहीं हो सकता ।

(२) यह द्वितीय मन्त्र वैयक्तिक अनुष्ठान बता रहा है, साथ साथ आत्माके गुण बता रहा है और मनुष्योंका सामूहिक जीवन कैसा होना चाहिये इसका भी आदेश दे रहा है इस कारण इसकी व्याख्या हम यहां अधिक विस्तारसे करते हैं। पाठक इस मंत्रका मनन अधिक करें । यह मंत्र ऋग्वेदमें ४।४०।५; वा० सं. १०।२४; १२।१४; तै० सं० १।८।१५।२; ४।२।१।५; तै० आ० १०।१०।२ ऐसा वैदिक वाङ्मयमें अनेक वार आया है, अतः इसका महत्व बडा है । अब इसके एक एक पदकी व्याख्या देखिये—

हंसः (हँ-सः, अहं+सः) =(आत्मिक) आत्मा सूर्यके समान है, वह सबका प्राण है, (सामाजिक) ' **अहं+सः** ' = मैं वह हूं, (**सः अहं**) वह मैं हूं, ऐसा भाव मनमें रखना चाहिये, वह और मैं विभिन्न नहीं, परंतु एकही आत्माके दो भाव हैं । उसके साथ मुझे ऐसा आचरण करना चाहिये कि जैसा मैं वही हूं और वही मैं हूँ। आत्मवत् सबके साथ व्यवहार होना चाहिये। वह और मैं पृथक् नहीं, इसलिये दूसरोंको दबाकर मैं ही ऊपर चढूं, यह नहीं होना चाहिये। मेरे जैसे अन्य हैं ऐसा भाव व्यवहार करनेके समय मनमें रहना चाहिये। इससे समाजके लोगोंके साथ प्रेम बढेगा और विवाद कम होंगे और संघ शक्ति विकसित होगी । पूंजीपति कहे कि मैं कर्मचारी हूं और कर्मचारी समझेकी मैं पूंजीपति हूं । दोनों मिलकर एक जीवन है । ऐसा समझनेसे और ऐसा व्यवहार होनेसेही सामाजिक संघर्ष दूर हो सकता है ।

शुचिषत्=(आत्मिक) आत्मा शुद्ध स्थानमें रहनेवाला शुद्ध है और प्रकाश स्वरूप है । (सामाजिक) शुद्ध स्थानमें रहना चाहिये । घरके अन्दर और बाहर, नगरमें तथा उपनगरमें और बाहर, इसी तरह सब राष्ट्रमें शुचिता रखनी चाहिये । ' शुचि-षद् ' का अर्थ ' पवित्र शुद्ध स्थानपर सोनेवाला ' ऐसा है । सोनेका स्थान स्वच्छ चाहिये । घर और नगरकी स्वच्छता करनी चाहिये, जिससे सब जनता स्वच्छ स्थानपरही सो सके । इससे आरोग्य बढेगा ।

वसुः=(आत्मिक) यह आत्मा सबका निवास कर्ता है । सबका आधार है । (सामाजिक) मनुष्य यत्न करे और वह जितनोंके निवास सुखपूर्ण कर सकता हो उतना यत्न करे ।

अन्तरिक्षसद्=(आत्मिक) यह आत्मा सबके मध्यमें-अन्तरिक्षमें रहता है । (सामाजिक) मनुष्य जनताके बीचमें रहे, जनतासे अपने आपको पृथक् समझ कर पृथक् न रहे ।

होता=(आत्मिक) यह दाता है, अपनी शक्तिका अर्पण करता है । (सामाजिक) मनुष्य अपने पासके सुखसाधनोंका विश्वसेवाके लिये दान, अर्पण अथवा त्याग करे ।

वेदिषद्=(आत्मिक) बुद्धिकी वेदीमें रहता है। (सामाजिक) वेदीपर-उच्च स्थानपर रहे, शयन करे, उच्च स्थानपर बैठने योग्य उच्चता प्राप्त करे।

अतिथिः=(आत्मिक) आत्माकी शरीरमें आने जानेकी कोई निश्चित तिथि नहीं होती। (सामाजिक) समाज सेवाके लिये (अतति इति अतिथिः) स्वयं सेवक बन कर भ्रमण करे। संन्यासी उपदेश देनेके लिये भ्रमण करे।

दुरोणसत्=(आत्मिक) शरीर रूपी घरमें रहता है। (सामाजिक) मनुष्योंको रहनेके लिये घर हों। राष्ट्रकी व्यवस्था ऐसी हो कि घरके विना कोई न रहे।

नृषद्=(आत्मिक) यह आत्मा मनुष्योंमें रहता है। (सामाजिक) यह साधक मनुष्योंकी सभामें जाता रहे, मनुष्योंमें रहे। अपने आपको मानवी समाजसे पृथक् न करे, क्योंकि इसने मानव समाजकी सेवा करनी है। समाजमें रहकर मानवी समाज रूपी विश्वरूपकी सेवा करे।

वरसद्=(आत्मिक) यह आत्मा बुद्धिके वरिष्ठ स्थानमें निवास करता है। (सामाजिक) यह साधक वरिष्ठ श्रेष्ठ सत्पुरुषोंकी संगतिमें रहे।

ऋतसद्=(आत्मिक) इस आत्माका निवास सत्यमें है। (सामाजिक) मनुष्य सत्य, ऋत, यज्ञ, सदाचार करनेवालोंके साथ रहे।

व्योमसद्=(आत्मिक) यह आत्मा आकाशमें रहता है। (सामाजिक) प्रत्येक व्यक्तिके लिय पर्याप्त अवकाश-पर्याप्त स्थान मिलता रहे, पर्याप्त अवकाश प्रत्येकके लिये न मिला तो मनुष्योंका आरोग्य भी नहीं रह सकता।

अब्जा=(आत्मिक) यह आत्मा जलसे उत्पन्न होनेवाले प्राणके साथ रहता है। (सामाजिक) जल स्थानके साथ मनुष्य निवास करे।

गोजा=(आत्मिक) गो नाम इंद्रियोंके साथ यह आत्मा रहता है। (सामाजिक) गौओंके साथ मनुष्य रहे। मनुष्य गौका दूध दही मखन, घी आदि पर्याप्त प्रमाणमें सेवन करे। मनुष्य गौकी पालना करे। गौके साथ रहे।

ऋतजा=(आत्मिक) यह आत्मा सत्यके साथ रहता है। सत्यके साहचर्यसे

आत्माकी शक्ति प्रकट होती है। (सामाजिक) सत्य, सरलता, यज्ञ, सदाचार आदिके साथ मनुष्य रहे। इनके साथ रहनेसेही मनुष्यकी दिव्य शक्ति बढती और प्रकट होती हं।

अद्रिजा=(आत्मिक) शरीरके पृष्ठवंश रूपी पर्वतमें आत्माकी शक्ति प्रकट होती है। वहां नाना चक्र हैं जिनमें आत्मिक शक्ति संचार करती है । (सामाजिक) मनुष्य पर्वतोंपर रहे, पर्वतपर कीले तैयार करके अपने समाजकी सुरक्षा करे। नगरी ग्यारह द्वारोंवाले दुर्गके अन्दर रहे। इसी तरह पर्वतके आश्रयसे रहे। पर्वतपर वायु सेवन करे, वहांके दृश्योंका आनंद लेवे।

ऋतं=(आत्मिक) आत्मा सत्य स्वरूप है।(सामाजिक) मानव समाज सरल अकुटिल व्यवहारसे अभ्युदयको प्राप्त होता है ।

बृहत्=(आत्मिक) आत्मा बडा है, महान् है, व्यापक है। (सामाजिक) मनुष्य ऐसे व्यवहार करे कि जिससे उसकी महत्ता बढती जाय।

इस तरह यह मंत्र आत्माका वर्णन कर रहा है । और आत्मा, परमात्मा, अथवा ईश्वरका वर्णन करनेवाले मन्त्र प्रायः सामाजिक और राष्ट्रीय आदर्श जीवन भी बताते है। यह कैसा बताते हैं वह इस मंत्रके इस स्पष्टीकरणमें हमने बताया है। इस स्पष्टीकरणमें जितना आशय बताया है उतनाही है ऐसा भाव पाठक न समझें। पर ऐसा समझें की यह केवल दिग्दर्शनही है। मनन करनेसे इससे अधिक बोध भी मिल सकता है।

यह तत्त्वज्ञान समाजके तथा राष्ट्रके जीवनमें ढालनेके लिये है । राष्ट्रका संचालन इस तत्त्वज्ञानके आधारपर चलेगा, तो ही सबका कल्याण हो सकता है। इसलिये पाठकोंको उचित है कि जो तत्त्वज्ञान यहां दर्शाया है वह व्यक्तिके, समाजके तथा राष्ट्रके जीवनमें किस तरह ढाला जाय इसका विचार करें । राज्य शासनही इस तत्त्वज्ञानके आधारपर आश्रित रहना चाहिये। तब इस तत्त्वज्ञानसे जो मानवी उन्नति हो सकती हं वह प्रत्यक्ष दीखेगी इसलिये पाठकोंको उचित है कि वे इस तत्त्वज्ञानसे राज्यशासन अथवा समाज व्यवस्था किस तरह हो सकती है, इसका विचार करें।

(३) प्राणको ऊपर ले जाता है, अपानको बाहर फेंकता है। इनके मध्यमें एक वामन देव बैठा है जो आत्मा है यही वामन देव है कि जो प्राणको अन्दर ले जाता और अपानको बाहर फेंकता है, इसी वामन देव—आत्मदेवकी पूजा सब देव अर्थात् सब इंद्रियां करती हैं। इस शरीरमें आत्माके लियेही सब इंद्रियां कार्य कर रहीं हैं।

(समाजमें, राष्ट्रमें) राष्ट्रमें जीवन साधन सर्वत्र पंहुचने चाहिये और मलिनताको बाहर फेंकना चाहिये। शरीरमें शासक आत्मा है वह प्राणको शरीरभरमें प्रत्येक अणुतक पंहुचाता है और वहांके मलोंको अपानद्वारा बाहर फेंक देता है और इससे सब शरीरको सचेत रखता है। इसी तरह राष्ट्रशासक ऐसा प्रबंध करें कि सब जीवन साधन राष्ट्रमें कोने कोने तक पंहुचते रहें, और वहांके जो दोष हों अथवा दोषकर्ता हों वे बाहर किये जांय। इस तरह यह राष्ट्र सचेत तथा स्फूर्तिवाला होकर रहे और दिव्य जीवनका अनुभव लेता रहे।

ऐसे राज्यशासकोंकी; तथा राज्यशासनकी सब लोग और सब अधिकारी सहायता करें। तथा इसीका सत्कार करें। इस शरीरमें आत्मा द्वारा जो किया जा रहा है। उसीको राष्ट्रमें राज्यशासन द्वारा करानेकी सूचना यहां मिलती है। यही विज्ञान है आत्माके ज्ञानको राष्ट्रशासनमें घटानाही ज्ञानका विज्ञान बनाना है।

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत् ॥ ४ ॥
न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ ५ ॥
हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥ ६ ॥

(शरीरस्थस्य देहिनः अस्य विस्रंसमानस्य) इस शरीरमें रहनेवाला देही जब इसको छोडने और (देहात् विमुच्यमानस्य) देहको छोडने लगता है, तब (अत्र किं परिशिष्यते) यहां क्या पीछे रहता है?

(एतत् वै तत्) यही वह है (४) ॥ (न प्राणेन, न अपानेन) न प्राणसे और नाही अपानसे (कश्चन मर्त्यः जीवति) कोई मनुष्य जीवित रहता है; (इतरेण तु जीवन्ति) अन्य सद्वस्तुसे ही मनुष्य जीवित रहता है (यस्मिन् एतौ उपाश्रितौ) जिसमें ये दोनों प्राण और अपान आश्रित होकर रहते हैं (५) ॥ हे (गौतम) नचिकेता ! (हन्त, ते इदं सनातनं गुह्यं ब्रह्म प्रवक्ष्यामि) अब तुझे इस सनातन गुह्य ब्रह्मके विषयमें उपदेश करता हूं, (यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति) जैसा कि मरनेपर आत्माकी अवस्था होती है (६) ॥

(४) इस शरीरका संचालक आत्मा जिस समय इस शरीरको छोडता है, तब यहां क्या अवशिष्ट रहता है ? कुछ भी नहीं क्योंकि संचालक आत्माही एक है कि जो यह सब यहां करता रहता है । वही संचालक है । इसी तरह राष्ट्रकी संचालक शक्ति जब राष्ट्रसे दूर होती है तब उस राष्ट्रमें क्या जीवन रहता है ? कुछ भी नहीं । इसलिये जो राष्ट्रमें तेज दीखता है वह राष्ट्र चालक शक्तिकाही तेज है । अतः इस शक्तिकी उपासना होनी चाहिये ।

(५) केवल प्राणसे अथवा केवल अपानसे कोई मनुष्य जीवित नहीं रह सकता । जिसमें ये प्राण और अपान रहकर कार्य करते हैं, उससे मनुष्य जीवित रहता है । इस कारण यह आत्मा यहां मुख्य है ।

(६) हे गौतम नाचिकेता ! यम कहता है कि मैं तुम्हें सनातन गुह्य ब्रह्मका वर्णन करके बताता हूं । मृत्यु होनेके पश्चात् आत्माका क्या होता है उस संबंधकी व्यवस्था ऐसी है—

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथा कर्म यथा श्रुतम् ॥ ७ ॥
य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥८॥
अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥९॥

(यथाकर्म यथाश्रुतं) जैसा जिसका कर्म और जैसा जिसका ज्ञान होता है (अन्ये देहिनः शरीरत्वाय योनिं प्रपद्यन्ते) उस प्रकार कई जीव शरीर प्राप्त करनेके लिये योनिको प्राप्त होते हैं और (अन्ये स्थाणुं अनुसंयन्ति) अन्य कई स्थावर अवस्थाको प्राप्त होते हैं (७)॥ (कामं कामं निर्मिमाणः पुरुषः) हरएक कामनाकी रचना करनेवाला पुरुष) यः एषः सुप्तेषु जागर्ति) सोए हुओंमें जागता है, (तत् एव शुक्रं) वही बल है, (तत् ब्रह्म) वही ब्रह्म है, (तत् एव अमृतं उच्यते) वही अमृत कहलाता है। (सर्वे लोकाः तस्मिन् श्रिताः) सब लोक इसीके आश्रयसे रहते हैं, (कश्चन तत् उ न अत्येति) कोई उसका उल्लंघन नहीं करता। (एतत् वै तत्) वही वह है (८)॥ (यथा भुवनानां प्रविष्टः एकः अग्निः) जैसा भुवनोंमें प्रविष्ट हुआ एक ही अग्नि (रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक रूपमें उस रूपवाला होकर रहा है, (तथा एकः सर्व भूतान्तरात्मा) वैसा एक ही सर्व भूतान्तरात्मा है जो (रूपं रूपं प्रतिरूपः) प्रत्येक रूपमें उस रूपवाला हुआ है और (बहिः च) बाहर भी है (९)॥

(७) कई जीव अपने कर्म और अपने ज्ञानके अनुसार नया दूसरा शरीर प्राप्त करनेके लिये योग्य योनीमें जाते हैं और दूसरा देह धारण करते हैं। और कई स्थावर अवस्थाको प्राप्त हो कर वहां अपना कर्मफल भोगने तक रहते हैं। कई जीवोंको जीव योनीमें जानेका अवसर प्राप्त होता है और कईयोंको स्थावर अवस्थामें रहना पडता है। जैसा जिसका कर्म और जैसा जिसका ज्ञान होता है वैसी उसकी गति होती है। राष्ट्रमें भी जिसका जैसा ज्ञान और कर्म होता है उसकी वैसी योग्यता हो सकती है।

(८) इस मंत्रका उत्तरार्ध इसी उपनिषदके २।१।९; और २।३।१ में देखने योग्य है। यह आत्मा सब इंद्रिय सोते हैं उस समय जागता है, नाना प्रकारकी इच्छाओंको निर्माण करता है, ' यह करना है वह करना है ' ऐसे संकल्प करता है। यह आत्माही (शुक्रं) तेजस्वी, बलवान्, वीर्यवान् है, वही (ब्रह्म) ब्रह्म है, वही महा सामर्थ्यवान् है, वही अमर है। इसीके आश्रयसे सब लोक लोकान्तर रहते हैं,

और कोई इसकी आज्ञाका उल्लंघन नही कर सकता। क्योंकि यही सर्वाधार है और सबसे अधिक सामर्थ्यवान् है।

राष्ट्रशासनमें भी इस मंत्रका भाव देखने योग्य है—इस मन्त्रमें निम्न लिखित वर्णन हैं—

१ **सुप्तेषु जागर्ति**=जब जनता राष्ट्रमें अथवा नगरमें सोती रहती है, उस समय नगर रक्षक तथा राष्ट्र रक्षक दल जागता रहता है।

२ **पुरुषः कामं कामं निर्मिमाणः**=मनुष्य प्रत्येक इच्छाकी निवृत्तीके लिये उपाय निर्माण करता है। मनुष्यकी आवश्यकताओंकी पूर्तता करनेका प्रयत्न करना। मनुष्यको आवश्यक सुखसाधन मिलें ऐसा करना है।

३ **सर्वे लोकाः तस्मिन् श्रिताः**=सब लोक उसके आश्रयसे रहते हैं (कि जो जागता हुआ सबकी सुरक्षा करता है और आवश्यक सुखसाधन मनुष्यको मिले ऐसी व्यवस्था करता है)।

४ **तत् ब्रह्म शुक्रं अमृतं**=वह ज्ञानमय, बल युक्त अमर है। (राज्य शासन भी ज्ञानसे चलाया जाय, वह सामर्थ्य युक्त और स्थायी हो।)

५ **कश्चन तत् न अत्येति**=कोई उसका उल्लंघन नही करता, (ऐसा वह राज्यशासन सामर्थ्यवान् चाहिये।)

६ **यथा कर्म यथा श्रुतं अनुसंयन्ति** (मं० ७)=जैसा जिसका कर्म और जैसा जिसका ज्ञान (वैसी उसकी गति-उन्नति व अवनति राष्ट्रमें होनी चाहिये)।

ये वाक्य पढतेही पाठकोंके ध्यानमें आजायगा कि ये आत्माकी जागतिक शासन व्यवस्थाका वर्णन करनेवाले वचन पृथ्वीपरके छोटे राजाके आदर्श राज्यशासनको भी प्रकट कर रहे हैं। पृथ्वीपरके राजाका कार्यक्षेत्र छोटा है, परमात्माका शासन क्षेत्र बडा विस्तृत है। परमात्माका विश्वशासन आदर्शशासन है। पृथ्वीपरके शासक राजा वह आदर्श शासन देखें और वैसा अपना राज्यशासन चलावें। बडे राजाके आदर्शके अनुसार छोटा राजा राज्यशासन करे। अध्यात्मका आदर्श अधिभूतमें लाना है वह इस तरह आ सकता है।

यह जो 'शुक्र अमृत ब्रह्म' है वही वै वह जो मरणके पश्चात् अवशिष्ट रहता है।

एक सर्वभूतान्तरात्मा

(७) जिस तरह एक अग्नि प्रत्येक वस्तुमें प्रविष्ट होकर उस वस्तुके रूपके समान रूपवाला होकर उस वस्तुके रंगरूप तथा आकारका दिखाई देता है, वैसा ही सब भूतोंका अन्तरात्मा एक है जो प्रत्येक वस्तुके रूपके समान रूपवाला हो कर रहा है और उसके बाहर भी वही है। अर्थात् सर्वभूतान्तरात्मा एक है और सब विश्वमें, विश्वके प्रत्येक रंगरूप आकारमें रहकर, उस आकारका दिखाई देता है। इस कारण इस परमात्माको विश्वात्मा, सर्वात्मा, सर्वभूतात्मा, विश्वरूप, सर्व-रूप आदि कहते हैं।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥
सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११
एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं ये ऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् १२

(यथा भुवनं प्रविष्टः एकः वायुः) जैसा सब भुवनमें प्रविष्ट होकर एक ही वायु (रूपं रूपं प्रतिरूपः बभूव) प्रत्येक रूपमें उस रूपवाला हुआ है, (एकः तथा सर्वभूतान्तरात्मा) वैसा एक ही सब भूतोंका अन्तरात्मा (रूपं रूपं प्रतिरूपः) प्रत्येक रूपमें उस रूपवाला हुआ है और वह (बहिः च) बाहर भी है (१०)॥ (यथा सूर्यः सर्वलोकस्य चक्षुः) जैसा सूर्य सब लोकोंका चक्षु है और वह (चाक्षुषैः बाह्यदोषैः न लिप्यते) आंखोंके दोषोंसे दूषित नहीं होता, (एकः तथा सर्वभूतान्तरात्मा) एक ही सब भूतोंका अन्तरात्मा है जो (बाह्यः) बाहर भी है वह (लोक दुःखेन न लिप्यते) लौकिक दुःखोंसे लिप्त नहीं होता (११)॥ (यः एकः वशी सर्वभूतान्तरात्मा) जो एक सबको वशमें रखनेवाला सब भूतोंका

अन्तरात्मा है जो (एकं रूपं बहुधा करोति) अपने एक रूपको अनेक प्रकारके रूपोंमें प्रकट करता है (तं आत्मस्थं) उसको अपने अन्दर स्थित (ये धीराः अनुपश्यन्ति) जो बुद्धिमान पुरुष देखते हैं, (तेषां शाश्वतं सुखं) उनको शाश्वत सुख मिलता है (न इतरेषां) दूसरोंको नहीं मिलता (१२)॥

(१०) वायु जैसा सब भुनवमें प्रविष्ट हो कर रहा है और प्रत्येक वस्तुमें तदाकार हुआ है, वैसा एकही सब भूतान्तरात्मा है जो प्रत्येक वस्तुमें रहा है और तदाकार होकर रहा है और उस वस्तुके बाहर भी है।

(११) सूर्य जैसा सब लोकोंका चक्षु है, तथापि लोकोंके नेत्रदोषसे सूर्यको किसी तरह दोष नहीं लगता, इसी तरह सर्व भूतोंका अन्तरात्मा एक है, वह लोकोंके दुःखसे कदापि दुखी नहीं होता और वह लोकोंके अन्दर और बाहर भी है। यह आत्मा सब विश्वके अच्छे बुरे पदार्थोंमें रहता है परंतु पदार्थोंके गुण दोषोंसे उसको किसी तरह गुण दोष नहीं लगते। जैसा सूर्य सब विश्वपर प्रकाशता है तथापि विश्वके पदार्थोंके गुणदोषोंसे वह न गुणी होता है नाहीं दोषी होता है।

(१२) यह सर्वभूतोंका अन्तरात्मा संपूर्ण विश्वमें एक है। यह अपने (एकं रूपं बहुधा करोति) एक रूपको अनेक रूपोंमें प्रकट करता है, वह एक होता हुआ भी अनेक होता है। जो इसको अपने अन्दर देखते हैं, उनको शाश्वत सुख मिलता है। जो इसको अपने अन्दर नहीं देखते उनको वह शाश्वत सुख नहीं मिलता।

'**एकोऽहं बहु स्यां**' मैं एक हूं परंतु मैं अब बहुत होऊंगा। एकही विश्वात्मा विश्वके अनंत रूपोंमें अनेकसा बना है। वस्तुतः वह अखण्ड और एक रस एकही है, परंतु वह अनेक दखिता है।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्
॥ १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति
कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १५॥

(नित्यानां नित्यः) नित्योंमें नित्य, (चेतनानां चेतनः) चेतनोंमें चेतन (यः बहूनां एकः) जो अनेकोंमें एक है ' वह (कामान् विदधाति) कामनाओंको पूर्ण करता है, (तं आत्मस्थं ये धीराः अनुपश्यति) उस अपनेमें स्थितको जो बुद्धिमान देखते हैं, (तेषां शाश्वती शान्तिः) उनको शाश्वत शांति मिलती है, (न इतरेषां) दूसरोंको नहीं मिलती (१३) ॥ (अनिर्देश्यं परमं सुखं) जो अतर्क्य परम सुख है (तत् एतत् इति मन्यन्ते) वह यही है ऐसा मानते हैं। (तत् कथं नु विजानीयां) उसको मैं किस तरह जानूं? (किं उ भाति, विभाति वा) क्या वह चमकता है वा प्रकाशता है? (१४)॥ (तत्र सूर्यः न भाति) वहां सूर्य प्रकाशता नहीं, (न चन्द्रतारकं) न चन्द्रमा अथवा तारकाओंका प्रकाश वहां होता है, (इमा विद्युतः न भान्ति) ये बिजलियां वहां नहीं चमकती, (अयं अग्निः कुतः) यह अग्नि तो कहां वहां प्रकाश सकता है? (तं एव भान्तं सर्वं अनुभाति) उसके प्रकाशसे ही सब कुछ प्रकाशता है, (तस्य भासा इदं सर्वं विभाति) उसके प्रकाशसे यह सब प्रकाशित होता है (१५) ॥

(१३) यह सर्व भूतान्तरात्मा नित्य पदार्थोंमें नित्य है, (चेतनानां चेतनः) चेतनोंको भी चेतना देनेवाला है। (बहूनां एकः) अनेकोंमें यह एक है, (यः कामान् विदधाति) और यह सब कामनओंको पूर्ण करता है। (ये धीराः ते आत्मस्थं अनुपश्यति) जो बुद्धिमान उसको अपने अन्दर देखते हैं (तेषां शाश्वती शान्तिः) उनको शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है। जो इस अपने अन्तरात्माको अपने अन्दर नहीं अनुभव करते उनको शान्ति नहीं मिलती। वे बेचैन, अशान्त होकर तडफते रहते हैं।

(१४) वह अतर्क्य परम सुख देनेवाला यही आत्मतत्त्व है । यह किस समय किस तरह स्वयं चमकता है अथवा कैसा अन्योंको प्रकाशता है यह मुझे कैसा विदित होगा ? अर्थात् यह गुरुके उपदेशसे विदित हो सकता है।

(१५) वह आत्मा स्वयं प्रकाशी है, वह स्वयंही प्रकाशता है । उस आत्मामें सूर्य नहीं प्रकाशता, चन्द्रतारकाओंका प्रकाश वहां नहीं होता, ये बिजलियां वहां नहीं प्रकाशती, फिर अग्नि तो उसमें कैसा प्रकाश कर सकेगा ? उसके प्रकाशनेसे ये सब सूर्य चन्द्र विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ प्रकाश रहे हैं, उसके तेजसेही ये सब तेजस्वी पदार्थ प्रकाशित हो रहे हैं । यह जो सूर्यादिकोंका प्रकाश है वह सब उस सर्वान्तर्यामी आत्माका ही प्रकाश है । उससे प्रकाश न मिला तो ये नहीं प्रकाशित हो सकते ।

रंग रूप रस गंध आदि जो अनुभव आ रहे हैं वे सब इस आत्माके कारणही आरहे हैं । यहां केवल प्रकाशके उपलक्षणसे कहा है, तथापि यह बात सब अनुभवोंके विषयमें ऐसीही है ऐसा समझना चाहिये ।

आंखसे प्रकाश दीखता है और 'सूर्य चन्द्र अग्नि प्रकाशता है' ऐसा हम कहते हैं, परंतु यह प्रकाश परमात्माका है । परमात्मा अपना प्रकाश सूर्यको देता है, उस परमात्मप्रकाशसे प्रकाशित होता हुआ सूर्य यहां प्रकाशित हो रहा है। इसी तरह परमात्माका दिव्य गन्ध पृथ्वीमें रहा है, इस दिव्यगन्धसे पृथ्वी गन्धवती हुई है और पृथ्वीका गन्ध आरहा है ऐसा हम कहते हैं । परमात्मा रसमय है, वह अपना रस जलमें रखता है । उसके दिव्य रससे रसवाला जल बना है, उसको पीकर हम कहते हैं कि यह रस इस जलका है, परंतु वह रस परमात्माकाही है। परमात्मामें स्पर्श गुण है, वह अपना स्पर्श गुण वायुमें रखता है और वायुको वह स्पर्श गुणवान् करता है इससे हम कहते हैं कि वायुका यह स्पर्श है, पर वस्तुतः यह स्पर्श परमात्माकाही है । परमात्मा या परब्रह्म शब्दगुणवान है । वह इसीलिये 'शब्दब्रह्म' कहा जाता है। यह अपना शब्द गुण आकाशमें रखता है, इससे हम सब अनुभव करते हैं कि आकाशका गुण शब्द है। परंतु वह शब्द परमात्माका है उसने वह आकाशमें रखा था । इस तरह इसी १५ वें

मंत्रसे सबके विषयमें जानना चाहिये। अर्थात् जो शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध हम अनुभव कर रहे हैं वह परमात्माकाही अनुभव है क्योंकि यहां एकही परमात्मा है जिसका यह अनुभव है। यहां नाना वस्तुमात्र हैं ही नहीं। जो अनुभव है वह परमात्माकाही अनुभव है।

॥ द्वितीय अध्यायकी द्वितीय वल्ली समाप्त ॥

द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीया वल्ली।

ऊर्ध्वमूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्॥ १॥
यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ २॥
भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः॥ ३॥

(ऊर्ध्वमूलः अवाक् शाखः एषः सनातनः अश्वत्थः) ऊपर जडें और नीचे जिसकी शाखाएं हैं ऐसा यह सनातन अश्वत्थ वृक्ष है। (तत् एव शुक्रं) वही बल है, (तत् ब्रह्म) वही ब्रह्म है (तत् एव अमृतं उच्यते) वही अमृत कहलाता है। (सर्वे लोकाः तस्मिन् श्रिताः) सब लोक उसके आश्रयसे रहते हैं, (कश्चन तत् उ न अत्येति) कोई भी उसका उल्लंघन नहीं करता। (एतत् वै तत्) यही वह है (१)॥ (यत् किं च इदं

सर्वं निःसृतं जगत्) जो कुछ भी यह सब जगत् उत्पन्न होकर (**प्राणे एजति**) प्राणमें डोल रहा है। वह प्राण (**उद्यतं वज्रं महत् भयं**) उठाये वज्रके समान महा भयंकर है। (**एतत् ये विदुः**) इसको जो जानते हैं, (**ते अमृताः भवन्ति**) वे अमर होते हैं (२) ॥ (**अस्य भयात् अग्निः तपति**) इसके भयसे अग्नि तपता है, (**भयात् सूर्यः तपति**) उसके भयसे सूर्य तपता है, (**भयात् इन्द्रः च वायुः च**) इसके भयसे इन्द्र और वायु तथा (**पञ्चमः मृत्युः धावति**) पांचवां मृत्यु दौडता है (३)

(१) ऊपर जिसकी जडें हैं और नीचे जिसकी शाखाएं हैं ऐसा यह सनातन अश्वत्थ वृक्ष है। यह सब विश्वही यह अश्वत्थ वृक्ष है। यही तेजस्वी अमृतमय ब्रह्म है। सब लोक लोकान्तर इसके आश्रयसे रहते हैं। इसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। यही वह आत्मतत्त्व है। इस मंत्रका उत्तर भाग इसी उपनिषद्में २।१।९; २।२।८ इन स्थानोंपर आगया है। गीता १५।१ में भी इस अश्वत्थ वृक्षका वर्णन है।

यहां ' अश्वत्थ ' पद है। इसके दो अर्थ होते हैं (१) ' **अ-श्व-त्थ** ' अर्थात् जो कलतक नहीं रहता, अर्थात् क्षणभंगुर अथवा नाशवान्। यह शब्द इस विश्वके लिये यहां प्रयुक्त हुआ है। परंतु यह विश्व यद्यपि व्यष्टि रूपसे नष्ट होनेवाला है। तथापि समष्टी रूपसे सनातन है। इसलिये समष्टिरूप विश्वके लिये यह अर्थ ठकि नहीं है। इसलिये यहां इसका दूसरा अर्थ अपेक्षित है। (२) ' **अश्वाः स्थिताः यत्र** ' जहां इंद्रियरूपी घोडे रहते हैं। इस विश्वमें आत्मा-बुद्धि-प्राणके साथ इंद्रियरूपी घोडे हैं जो इसके साथ रहते हैं। इसी उपनिषद्में ' इंद्रियोंको घोडे ' करके वर्णन किया है (देखो कठ १।३।३-९)। ये घोडे इस वृक्षके साथ बंधे रहते हैं और इसके नीचे चरते रहते हैं। यह सब वृक्ष ब्रह्मवृक्ष है और अमृतमय इसका रस है और यह बल बढानेवाला (ब्रह्म अमृतं शुक्रं) है। भगवद्गीतामें इस वृक्षकी शाखाएं संयमसे काटनी चाहिये ऐसा कहा है। पर यहां वैसा नहीं कहा। संयम तो सर्वत्र आवश्यकही है। परंतु इसकी शाखाएं काटनेकी आवश्यकता नहीं है। वैसाही यह वृक्ष सहायक है। जैसा यह है (शुक्रं) तेज और

बल देता है, (ब्रह्म) यह ज्ञान देता है और इसका रस (अमृतं) अमृतही है। इस रससे सब लोक लोकान्तर परिपुष्ट हो रहे हैं। गीताके अश्वत्थ वृक्षमें और कठोपनिषद्के अश्वत्थ वृक्षमें थोडी भिन्नता है, वह पाठक मननपूर्वक देखें।

(२) जो कुछ इस विषयमें है वह सब प्राणमें रहता और प्राणकी गतिसे हिलता चलता डोलता रहता है। जैसा (महत् वज्रं उद्यतं भयं) बडा वज्र उठाया जाय तो भय उत्पन्न करता है वैसाही यह प्राण बडा भयानक है। क्योंकि यह प्राण रहा तो प्राणी जीवित रहते हैं और न रहा तो मृत्युके वश हो जाते हैं। इसलिये सबके लिये यह प्राण भयप्रद है। सब जगत्में जो गति होती है वह इस प्राणके कारण होती है। जब जगत् इस प्राणकी गतिको भयकी दृष्टीसे देखते हैं। जो इसकी यह शक्ति जानते हैं वे (ते अमृताः भवन्ति) अमर होते हैं।

(३) इसके भयसे अग्नि तपता है, इसके भयसे सूर्य प्रकाशता है, इन्द्र और वायु अपने कार्यमें दक्ष रहते हैं वे इसीके भयसे है। और पांचवाँ मृत्यु इधर उधर दौडता है वह इसीके भयसे दौडता है। सभी जगत् प्राणके भयसे कांप रहा है। ऐसा यह रुद्ररूप प्राणही मुख्य है।

शोकरहित स्थिति

इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥
यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथा अप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥
इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६ ॥

(शरीरस्य विस्रसः प्राक्) शरीरके गिरनेके पूर्व (इह चेत् बोद्धुं अशकत्) यहां रहते हुए यदि इसको जाननेमें समर्थ न हो सका; (ततः सर्गेषु लोकेषु) तब तो सृष्टि होनेके समय उत्पन्न होनेवाले लोकोंमें (शरीरत्वाय

कल्पते) शरीर धारणके लिये यह योग्य होता है (४) ॥ (यथा आदर्शे) जैसे शीशेमें (तथा आत्मनि) वैसे अपने अन्दर, (यथा स्वप्ने तथा पितृ-लोके) जिस तरह स्वप्नमें वैसे ही पितृलोकमें, (यथा अप्सु परि ददृशे) जैसा जलोंमें दीखता है, (तथा गन्धर्व लोके) वैसा गन्धर्वलोकमें दीखता है, (छाया-आतपयोः इव ब्रह्मलोके) छाया और प्रकाशके समान ब्रह्म लोकमें दीखता है (५) ॥ (पृथक् उत्पद्यमाननां इन्द्रियाणां) पृथक् पृथक् उत्पन्न होनेवाले इन्द्रियोंके, (पृथग्भाव उदयास्तमयौ च) पृथग्भावको और उनके उदय और अस्तको, (यत् मत्वा धीरः न शोचति) जानकर बुद्धिमान पुरुषको शोक नहीं होता ॥ (६)

(४) शरीरके मृत्युके पूर्व, इस शरीरमें रहते हुए, यदि (इह बोद्धुं अशकत्) इस ज्ञानको यह साधक नहीं प्राप्त कर सका, तो इस सृष्टिमें वह (शरीरत्वाय कल्पते) नया शरीर धारण करनेके लिये योग्य समझा जाता है। उसको दूसरा शरीर मिलता है। अर्थात् यदि यह आत्मज्ञान उसको हुआ तो फिर शरीर ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

(५) जैसा स्वच्छ दर्पणमें किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब स्वच्छ दीखता है वैसाही अपनी विज्ञानवती-बुद्धिमें आत्माका स्वरूप स्वच्छ दीखता है। दर्पण मलिन रहा तो प्रतिबिंब भी कलंकित दीखता है और दर्पण स्वच्छ रहा तो प्रतिबिंब उत्तम दीखता है। इसी तरह ज्ञान विज्ञानसे परिशुद्ध हुई बुद्धिमें आत्माका स्पष्ट बोध होता है और विकृत मिथ्याज्ञानवाली बुद्धिमें विकृत अनुभव होता है। जैसा स्वप्नमें आकार दिखाई देते हैं वैसे पितृलोकमें भी दिखाई देते हैं। जिस तरह जलमें प्रतिबिंब दीखता है, जल शान्त रहा तो प्रतिबिंब उत्तम दीखता है और अशांत जलमें प्रतिबिंब भी विचलित सा दीखता है, वैसाही गन्धर्व लोकमें दर्शन होता है। परंतु जैसा स्वच्छ प्रकाशमें प्रत्येक पदार्थ स्वच्छ दीखता है वैसा ब्रह्म लोकमें ब्रह्मका दर्शन स्वच्छ होता है। ज्ञान विज्ञान युक्तको ब्रह्मलोक कहते हैं। ज्ञान विज्ञान युक्त जो होते हैं वे स्पष्ट रीतिसे ब्रह्मको देखते हैं। छाया-प्रकाश, प्रतिबिंब-बिंब इसी तरह जीवात्मा-परमात्माका स्वरूप है यह जानना चाहिये। यह भाव यहां है।

(६) पृथक् पृथक् रहनेवाले इन्द्रियोंके पृथक् भाव, तथा उनके उदय और अस्त इनका विचार करके विज्ञानवान् पुरुषको शोक नहीं होता है। प्रत्येक इन्द्रियका अनुभव पृथक् पृथक् होता है, जाग्रतिके प्रारंभमें इंद्रियोंका उदय और सुषुप्तिमें उनका अस्त होता है इनका विचार करनेसे इनके पीछे रहे आत्माका बोध होता है और इस कारण इस साधकका सब शोक दूर होता है।

अमरत्व-प्राप्ति

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७ ॥
अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥
न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाऽभिकॢप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥९॥

(इन्द्रियेभ्यः मनः परं) इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, (मनसः सत्त्वं उत्तमं) मनसे बुद्धि श्रेष्ठ है, (सत्वात् अधि महान् आत्मा) बुद्धिसे महत्तत्त्व श्रेष्ठ है, (महतः अव्यक्तं उत्तमं) महत्तत्त्वसे अव्यक्त प्रकृति श्रेष्ठ है (७) ॥ (अव्यक्तात् परः पुरुषः) अव्यक्त प्रकृतिसे पुरुष श्रेष्ठ है, जो (व्यापकः आलिंगः एव च) जो सर्वव्यापक और चिन्हरहित है (यत् ज्ञात्वा जन्तुः मुच्यते) जिसको जाननेसे प्राणी मुक्त होता है, (अमृतत्वं च गछति) अमरत्वको प्राप्त होता है (८) ॥ (अस्य रूपं संदृशे न तिष्ठति) इसका रूप दृष्टिपथमें नहीं रहता, (कश्चन एवं चक्षुषा न पश्यति) कोई इसको आंखसे देख नहीं सकता; (हृदा मनीषा मनसा अभिक्लृप्तः) हृदय, बुद्धि तथा मन इनसे वह जानने योग्य है (ये एतत् विदुः) जो इसको जानते हैं (ते अमृताः भवन्ति) वे अमर होते हैं (९) ॥

(७-८) इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है, मनसे सत्त्व अर्थात् बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धिसे महत्तत्त्व श्रेष्ठ है, महत्तत्त्वसे अव्यक्त प्रकृति श्रेष्ठ है, अव्यक्त प्रकृतिसे पुरुष अर्थात् परमात्मा परब्रह्म श्रेष्ठ है। यह परब्रह्म परमात्मा सर्वव्यापक है और चिन्हरहित है।

इसलिये किसी प्रकारके चिन्हसे उसको दर्शाया नहीं जाता। इस ब्रह्मतत्त्वको जाननेसे मनुष्यकी मुक्ति होती है और अमृतत्वकी प्राप्ति होती है।

कठ अ. १ वल्ली ३ में १०-११ मंत्रोंमें भी यही वर्णन है। वहांका क्रम ऐसा है—१ इंद्रिय, २ अर्थ, ३ मन, ४ बुद्धि, ५ महानात्मा, ६ अव्यक्त, ७ पुरुष। और यहांके वर्णनका क्रम ऐसा है—१ इंद्रिय, २—, ३ मन, ४ सत्त्व, ५ महानात्मा, ६ अव्यक्त, ७ पुरुष। यहां एक बीचका पदार्थ कहा नहीं है और बुद्धिके स्थानपर सत्त्व कहा है? इस तरह तुलना करनेसे कौनसा पद किस अर्थके उद्देश्यसे लिखा है इसका बोध हो सकता है।

(९) इसका रूप दृष्टिके पथमें नहीं आता, कोई इसको केवल अपनी आंखोंसे नहीं देख सकता। हृदय, बुद्धि तथा मनसे यह जानने योग्य है जो यह जानते हैं वे अमर होते हैं। केवल दृष्टीसे जो दीखता है उतनाही परमात्मा नहीं है। सब इंद्रियोंसे जो अनुभव आते हैं, उनका संग्रह मन करता है, बुद्धि उन सबको जोडती है और हृदयमें उसका बोध होता है। इस तरह गुहामें उसका दर्शन होनेका तात्पर्य हृदय कंधरा है। हृदयमें वह रहता है उसका यह आशय है। जो इस तरह इसको जानते हैं वे अमर होते हैं।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥ १०॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ॥ ११॥
नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते॥ १२॥

(यदा पञ्च ज्ञानानि मनसा सह अवतिष्ठन्ते) जब पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ मनके साथ स्थिर हो जाती हैं, (बुद्धिः च न विचेष्टते) जब बुद्धि विचलित नहीं होती, तब (तां परमां गतिं आहुः) उसको परम गति कहते हैं (१०)॥ (तां स्थिरां इन्द्रिय धारणां) उस स्थिर इन्द्रिय धारणाको (योगं इति मन्यन्ते) योग ऐसा कहते हैं। (तदा अप्रमत्तः भवति) तब

यह प्रमादरहित होता है, यह (योगः हि प्रभव-अप्ययौ) योग उत्पन्न होता है और इसका नाश भी होता है (११) ॥ (नैव वाचा, न मनसा, न चक्षुषा) वाणी मन और चक्षुके द्वारा यह (प्राप्तुं शक्यः) प्राप्त करना अशक्य है, ('अस्ति' इति ब्रुवतः अन्यत्र) 'वह है' ऐसा कहनेवालेके सिवाय अन्य स्थानमें (तत् कथं उपलभ्यते) वह कैसे मिल सकता है ? (१२) ॥

परम गति

(१०) जब पांचों ज्ञानेंद्रियाँ मनके साथ स्तब्ध हो जाती हैं, बुद्धि भी इधर उधरका विचार नहीं करती, उस समय जो अवस्था होती है उसको '**परम गति**' कहते हैं। जबतक हमारा मन संकल्प विकल्प करता रहेगा, तबतक यह परम गति मनुष्यको प्राप्त नहीं हो सकती।

योग

(११) इस स्थिर इन्द्रिय धारणाको योग कहते हैं। इस योगमें स्थिर होने--वाला योगी अप्रमत्त होता है, अर्थात् उन्मत्त नहीं होता। शान्त रहता है। यह शान्त स्थिति ही अनुभव करने योग्य है। (हि योगः प्रभव-अप्ययौ) क्योंकि योग करनेपर भी यह सिद्धि एक समय मिलती है और दूसरे समय दूर भी होती है। इसलिये इस योगकी सिद्धिको सुदृढ करनेका अभ्यास करना चाहिये।

(१२) वाणी, मन और चक्षुसे इस आत्माकी प्राप्ति नहीं होती। केवल वाणीसे उसका कितना भी वर्णन किया तो भी वह अपूर्ण ही होगा, मनसे केवल उसका कितना भी मनन किया तो भी वह मनन अधूरा ही रहेगा क्योंकि उससे वह बहुत ही बडा है। इसी तरह नेत्रसे उसका कितना भी निरीक्षण किया तो भी वह और अधिक होनेसे वह नेत्रका निरीक्षण अधूरा ही होगा, इस तरह एक एक इंद्रियसे जितना भी उसका ज्ञान मिलेगा उतना उसका पूर्ण ज्ञान नहीं होगा। सबका मिलकर इकठ्ठा किया जो अनुभव है वह उसका ज्ञान है। वह

(' अस्ति ' इति ब्रुवतः) ' है ' ऐसा कहना ही है। निःसंदेह ' वह है, ' ऐसा ही वह अनुभव है। (अन्यत्र कथं तत् उपलभ्यते) इससे भिन्न कितना भी वर्णन किया तो भी वह कितनासा बोध दे सकेगा ? अर्थात् अन्तिम बोध उसके निःसंदेह अस्तित्वका बोध है। वह होना चाहिये और संदेह निवृत्त होना चाहिये।

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥ १३ ॥
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥
यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ॥ १५ ॥

(' अस्ति ' इति एव उपलब्धव्यः) ' वह है ' इस रूपसेही वह जानना योग्य है तथा (उभयोः तत्त्वभावेन) दोनोंके तत्त्वज्ञानसे भी उसको जान सकते हैं। (' अस्ति ' इति एव उपलब्धस्य) ' है ' ऐसा जाननेपर (तत्त्वभावः प्रसीदति) उसका तत्त्वस्वरूप प्रसन्न होता है (१३) ॥ (ये अस्य हृदि श्रिताः कामाः) जो इसके हृदयमें रही कामनाएँ हैं (यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते) जब वे सब छूट जाते हैं, (अथ मर्त्यः अमृतः भवति) तब मनुष्य अमर होता है, (अत्र ब्रह्म समश्नुते) यहां वह ब्रह्मको प्राप्त होता है (१४) ॥ (यदा इह हृदयस्य सर्वे ग्रन्थयः) जब यहां हृदयकी सब ग्रन्थियां (प्रभिद्यन्ते) छूट जातीं हैं, (अथ मर्त्यः अमृतः भवति) तब मर्त्य अमर हो जाता है (एतावत् हि अनुशासनम्) यहांतक ही अनुशासन है (१५) ॥

(१३-१५) ' वह है ' इतना निश्चित ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। इतना ज्ञान होनेपर अन्तःकरण अपूर्व आनन्दसे सुप्रसन्न हो जाता है। हृदयकी सब भोग कामनाएं दूर होती हैं, मनुष्य अमर होता है और ब्रह्मको प्राप्त होता है। इस समय हृदयकी सब ग्रन्थियां टूट जाती हैं। और मानव अमर होता है यहां तक यह उपदेश करनेकी मर्यादा है। इसके आगे स्वयं जाननेका है।

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभि निःसृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषिकां धैर्येण।
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥१७॥
मृत्यु प्रोक्तां नाचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव १८

(शतं च एका हृदयस्य नाड्यः) एक सौ एक हृदयकी नाडियां हैं, (तासां एका मूर्धानं अभिनिःसृता) उनमेंसे एक मस्तककी ओर गयी है। (तया उर्ध्वं आयन्) उससे ऊपर जानेवाला मनुष्य (अमृतत्वं एति) अमरत्वको प्राप्त करता है (विष्वङ् अन्या उत्क्रमणे भवन्ति) चारों ओर फैलनेवाली अन्य नाडियां विभिन्न गति देनेवाली हैं (१६)॥ (अंगुष्ठ-मात्रः पुरुषः अन्तरात्मा) अंगुष्ठ मात्र पुरुष अन्तरात्मामें है, वह (जनानां हृदये संनिविष्टः) जनोंके हृदयमें रहता है। (तं स्वात् शरीरात् धैर्येण प्रबृहेत्) उसको अपने शरीरसे धैर्यसे निकालें, देखें। (मुञ्जात् इव इषिकां) जैसे मुञ्जसे तील-अन्दरकी तार-निकाली जाती है। (तं शुक्रं अमृतं विद्यात्) इसको बल और अमृत जाने, यही चमकता हुआ अमृत है (१७)॥ (मृत्यु प्रोक्तां एतां विद्यां) यमके द्वारा कही इस विद्याको और (कृत्स्नं योगविधिं च) संपूर्ण योगविधिको (अथ नाचिकेतः लब्ध्वा) नाचिकेता प्राप्त होकर (ब्रह्मप्राप्तः विरजः विमृत्युः अभूत्) ब्रह्मको प्राप्त रजसे और मृत्युसे दूर हुआ। इसी तरह (यः अन्यः अध्यात्मं एवंवित् एव) जो कोई दूसरा इस तरह इस अध्यात्म विद्याको जानेगा वह भी ऐसा ही मृत्युरहित होगा (१८)॥

(१६) हृदयमें एकसौ एक नाडियां होती हैं। उनमेंसे एक मस्तककी ओर जाती है, उससे ऊपर चढनेवाला साधक अमरत्वको प्राप्त करता है। यह मार्ग

प्राणायामसे साध्य है। अन्य नाडियोंसे अन्य लोग जाते हैं और वे विभिन्न गति प्राप्त करते हैं। यह गति भोगी तथा प्राणायामादि योगसाधन न करनेवालेकी होती है।

(१७) अंगुष्ठ मात्र पुरुष मानवोंके हृदयमें सदा रहता है। उसको अपने शरीरसे पृथक् करना चाहिये, जैसे मुञ्जसे तिलको पृथक् करते हैं। यह अनुष्ठान बडे धैर्यसे करना आवश्यक है। शरीरसे सर्वथा पृथक् आत्मसत्ताका अनुभव करानेवाला यह अनुष्ठान है। इसको (शुक्रं अमृतं) सामर्थ्य युक्त अमृत कहते हैं। निःसंदेह इसको सामर्थ्यमय तेजस्वी अमृत कहते हैं।

(१८) यह उपदेश मृत्युने नचिकेतासे कहा, नचिकेताने इस विद्याको प्राप्त किया। योगसाधनकी प्रक्रियाको भी मृत्युसे नचिकेताने प्राप्त किया। इससे नचिकेता ब्रह्मको प्राप्त हुआ, निष्कलंक हुआ और मृत्युसे भी दूर हुआ। जो इस विद्याको प्राप्त करेगा वह भी ऐसा ही सिद्ध बनेगा।

॥ यहां द्वितीय अध्यायकी तीसरी वल्ली समाप्त हुई ॥

शान्ति मन्त्र

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

कठोनिषद् समाप्ता

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें नचिकेताका उपाख्यान

(तै० ब्रा० कां० ३ प्र० ११ अनु० ८)

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ।
तस्य ह नाचिकेता नाम पुत्र आस। तँ ह कुमारं सन्तम्।
दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश स होवाच।
तत कस्मै मां दास्यसीति। द्वितीयं तृतीयम्, इति।
तँ ह परीत उवाच। मृत्युवे त्वा ददामि, इति।
तँ ह स्मोत्थितं वागभिवदति। गौतम-कुमारमिति।
स होवाच। परेहि मृत्योर्गृहान्। मृत्यवे त्वाऽदामिति।
तं वै प्रवसन्तं गन्तासीति होवाच। तस्य स्म तिस्रो
रात्रीरनाश्वान् गृहे वसतात्। स यदि त्वा पृच्छेत्।
कुमार, कति रात्रीरवात्सीरिति। तिस्र इति प्रतिब्रूतात्।
किं प्रथमां रात्रिमाश्ना इति। प्रजां त इति। किं द्वितीयामिति।
पशूँस्त इति। किं तृतीयामिति। साधुकृत्यां त इति।
तं वै सन्तं जगाम। तस्य ह तिस्रो रात्रीरनाश्वान् गृह उवास।
तमागत्य पप्रच्छ। कुमार कति रात्रीरवात्सीरिति।
तिस्र इति प्रत्युवाच। किं प्रथमां रात्रिमाश्ना इति।
प्रजा त इति। किं द्वितीयामिति। पशूँस्त इति।
किं तृतीयामिति। साधु कृत्यां त इति।
नमस्ते अस्तु भगव इति होवाच। वरं वृणीष्वेति।
पितरमेव जीवन्नयानीति। द्वितीयं वृणीष्वेति।
इष्टापूर्तयोर्मेऽक्षितिं ब्रूहीति होवाच।

तस्मै हैतमग्निं नाचिकेतमुवाच ।
ततो वै तस्येष्टापूर्ते नाक्षीयेते, इति ।
नस्येष्टापूर्ते क्षीयेते । योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते ।
य उ चैनमेवं वेद, इति ।

तृतीयं वृणीष्वेति । पुनर्मृत्योर्मेऽपचितिं ब्रूहीति होवाच ।
तस्मै हैतमग्निं नाचिकेतमुवाच ।
ततो वै सोऽप पुनर्मृत्युमजयत । अप पुनर्मृत्युं जयति ।
योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते । य उ चैनमेवं वेद, इति ।

" वाजश्रवा ऋषिने सर्वमेध यज्ञ किया और उसमें अपना सर्वस्व समर्पण किया । उसका पुत्र नचिकेता नामका था । वह कुमार ही था । जब ब्राह्मण गौवें दक्षिणा रूपमें लेकर जाने लगे तब उस पुत्रमें श्रद्धा उत्पन्न हुई । उसने अपने पितासे पूछा कि ' मुझे किसको दोगे ' । दो तीन वार ऐसा पूछा । तब पिता क्रुद्ध हुए और उन्होंने पुत्रसे कहा कि मैं तुमको मृत्युको देता हूं ।

इतनेमें आकाशवाणी हुई और वह उस गौतम कुमारसे बोली कि हे कुमार ! अब तू मृत्युके घर जा। वह कुमार जाने लगा तो वह वाणी बोली कि ' हे कुमार ! मृत्युके घर जाकर तीन रात्रीतक भूखा रहना। जिस समय वह यम पूछे कि कितनी रात्रीतक तूने यहां निवास किया तो कहना कि ' तीन रात्रीतक ' । पहिली रात्रीमें क्या खाया ऐसा यमके पूछनेपर कहना कि ' तेरी प्रजा (तेरी संतान) खायी ' । दूसरी रात्रीमें क्या खाया ऐसा पूछनेपर बोलना कि ' तेरे पशु खाये '। और तीसरी रात्रीमें क्या खाया ऐसा पूछनेपर ' तेरा सुकृत खाया ' ऐसा उत्तर देना ।

वह नचिकेता यमके घर गया । वहां तीन रात्रीतक भूखा रहा। यमके पूछनेपर नचिकेताने वैसे ही उत्तर दिये तब यमने उसे प्रणाम किया और कहा कि वर मांग ।

नचिकेता—पिताके पास जीवित दशामें मैं जाऊं।

यम—वैसा होगा। और एक वर मांग।

नचिकेता—मेरे इष्टापूर्त (यज्ञ) अक्षय हों।

यम—वैसा होगा।

ऐसा कहकर यमने नचिकेताको अग्नि चयनकी विधि बतायी। और कहा कि जो इस नाचिकेत अग्निका चयन करता है उसके इष्ट और पूर्त यज्ञ सफल होते हैं।

यम—तीसरा वर मांग।

नचिकेता—मृत्युसे बचनेका उपाय बताओ।

यमने उसे नाचिकेत अग्निका उपदेश किया। जो इस ज्ञानको प्राप्त करता है वह मृत्युपर विजय प्राप्त करता है।

\+ + + +

इस तरह यह कथा तैत्तिरीय ब्राह्मणमें है। इसीका विस्तार कठ शाखामें हुआ है जो कठोपनिषद् करके प्रसिद्ध है।

महाभारतमें नाचिकेताका उपाख्यान

युधिष्ठिरके प्रश्न करनेपर कि गोदानका फल क्या है सो कहो, भीष्म पितामह कहते हैं— (महाभारत अनुशासन पर्व १०६ अध्याय)

भीष्म उवाच—

ऋषिरौद्दालकिर्दीक्षामुपगम्य ततः सुतम् ।
त्वं मामुपचरस्वेति नाचिकेतमभाषत ॥ ३ ॥
इध्मा दर्भाः सुमनसः कलशश्चाभितो जलम् ।
विस्मृतं मे तदादाय नदीतीरादिहाव्रज ॥ ५ ॥
गत्वानवाप्य तत्सर्वं नदीवेगसमाप्लुतम् ।
न पश्यामि तदित्येवं पितरं सोऽब्रवीन्मुनिः ॥ ६ ॥
क्षुत्पिपासाश्रमाविष्टो मुनिरौद्दालकिस्तदा ।
यमं पश्येति तं पुत्रमशपत्क्रोधमूर्छितः ॥ ७ ॥
तथा स पित्राभिहतो वाग्वज्रेण कृताञ्जलिः ।
प्रसीदेति ब्रुवन्नेव गतसत्वोऽपतद्भुवि ॥ ८ ॥
नाचिकेतं पिता दृष्ट्वा पतितो दुःखमूर्छितः ।
किं मया कृतमित्युक्त्वा निपपात महीतले ॥ ९ ॥
पित्र्येणाश्रुप्रपातेन नाचिकेतः कुरूद्वह ।
प्रास्यन्दच्छयने कौश्ये वृष्ट्या सस्यमिवाप्लुतम् ॥ ११ ॥
स पर्यपृच्छत्तं पुत्रं श्लाघ्यं पर्यागतं पुनः ।
दिव्यैर्गन्धैः समादिग्धं क्षीणस्वप्नमिवोत्थितम् ॥ १२ ॥
अपि पुत्र जिता लोकाः शुभास्ते स्वेन कर्मणा ।
दिष्ट्या चासि पुनः प्राप्तो न हि ते मानुषं वपुः ॥ १३ ॥

प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य पित्रा पृष्टो महात्मना ।
अभ्युत्थाय पितुर्मध्ये महर्षीणां न्यवेदयत् ॥ १४ ॥
वैवस्वतीं प्राप्य सभामपश्यं सहस्रशो योजनहैमभौमाम् ॥ १५ ॥
(यम उवाच)
ददानि किंचापि मनः प्रणीतं प्रियातिथेस्तव कामान्वृणीष्व ॥ १९ ॥
(नचिकेता उवाच)
अपश्यं तत्र वेश्मानि तैजसानि महात्मनाम् ।
नानासंस्थानरूपाणि सर्वरत्नमयानि च ॥ २२ ॥
क्षीरस्यैताः सर्पिषश्चैव नद्यः शश्वत्स्रोताः कस्य भोज्याः प्रवृत्ताः २८
यमोऽब्रवीद्विद्धि भोज्यांस्त्वमेतान् ये दातारः साधवो गोरसानाम् ॥ २९ ॥
तिस्रो रात्र्यस्त्वद्भिरुपोष्य भूमौ तृप्ता गावस्तर्पितेभ्यः प्रदेयाः॥३३॥
यावन्ति रोमाणि भवन्ति तस्यास्तावद्वर्षा व्यश्नुते स्वर्गलोकम्॥३४॥
(घृतधेनु-तिलधेनु-जलधेनु-प्रदानं)
अनुज्ञातस्तेन वैवस्वतेन प्रत्यागमं भगवत्पादमूलम् ॥ ५७ ॥

भीष्मपितामहने कहा, कि हे युद्धिष्ठिर ! गोदान करनेका फल सुन। इस विषयमें एक प्राचीन कथा है। औद्दालकि नामक एक ऋषि था । उसने यज्ञकी दीक्षा ली और अपने पुत्र नचिकेतासे कहा कि तुम इस यज्ञमें मेरी सहायता करो। पश्चात् एकवार उस ऋषिने अपने पुत्रसे कहा कि नदी तीरपर इध्म, दर्भ फूल, कलश रखे हैं वे ले आओ। नचिकेता गया, पर उसने वे पदार्थ वहां नहीं पाये। क्योंकि वे सब पदार्थ नदीके जलके वेगसे बह गये थे। नचिकेताने वापस आकर पितासे कहा कि वहां वे पदार्थ नहीं हैं। पिता क्रोधित हुए और बोले कि ' यमके पास जा '। पुत्रने हाथ जोडे और कहा ' पिताजी ! प्रसन्न हो

जाइये।' इतनेमें नचिकेतापर उस शापका परिणाम हुआ और वह मूर्छित होकर भूमिपर गिर गया। यह देखकर पिताको दुःख हुआ और मैंने यह क्या किया ऐसा कहकर रोने लगा। इधर नचिकेता यमलोकमें पहुंचा। वह एक रात्रीतक मूर्छित रहा और जाग उठा। तब पिताने कहा कि हे पुत्र! तुम यमका दर्शन करके वापस आ गये हो यह तुम्हारा शरीर भी अब दिव्य शरीर हो गया है। अतः कह कि वहां क्या हुआ।

नचिकेताने कहा कि मैं यमलोकमें गया, यमका दर्शन किया, वहां भूमि भी सुवर्णकी है, सोनेके घर हैं, दूध, और घीकी नादियां हैं। मैंने यमसे पूछा कि ये नादियां किनके लिये हैं? तब यमने कहा कि जो गौओंका दान सत्पात्रमें करते हैं उनके लिये ये नादियां हैं। वे गोदान करनेवाले यहां आकर रहते हैं और यथेछ गोरसका सेवन करते हैं।

घीकी धेनु, तिलकी धेनु, जलकी धेनु भी दी जा सकती है, यदि सच्चा धेनु अपने पास न हो। पर धेनुका दान बडा लाभदायक है, इसलिये गोदान अवश्य करना चाहिये।

ऐसा यमराजसे सुनकर उनकी आज्ञासे मैं वापस आया हूं।

इस कथामें गोदानका महत्त्व है, परंतु कठोपनिषद्का तत्त्वज्ञान कुछ भी नहीं है।

"परमात्माके गुण वर्णनमें
राज्यके शासनका आदर्श"

वेदकी संहिताओंमें तथा ब्राह्मण अरण्योकोंमें, इसी तरह उपनिषदों और अन्यान्य ग्रन्थोंमें परमात्माका गुणवर्णन किया है। उसका उद्देश्य यह है कि यह साधक ब्राह्मीस्थितिमें वैसा बननेवाला है, उसकी कल्पना साधकको साधक अवस्थामें हो जाय और वह अपनेमें वह वर्णन देखता जाय और देखे कि अपनी उन्नति कितनी हो चुकी है और कितनी होनी है। साधकको अपनी साधनाकी उन्नतिका पता परमात्माके गुणवर्णनसे इस तरह मिल सकता है। पाठक इस कूंजीको अपने मनमें स्थिर करें। इसी तरह--

१ नरका नारायण, जीवका शिव, अमृतपुत्रका अमरपिता, आत्माका परमात्मा, देवका महादेव बनना है। इसलिये (साधक) नरके सामने (साध्य) नारायणके गुण रहे तो वे उसको मार्ग बतायेंगे, और इस साधन मार्गसे चलकर यह साधक अपने प्राप्तव्य पदपर आरूढ होगा, इसालिये परमात्माका इतना वर्णन आर्य शास्त्रोंमें स्थान स्थानपर किया है। पाठक इसका इस उद्देश्य-के लिये उपयोग करें और अपने अन्दर परमात्माके गुण अधिकसे अधिक ढालते जांय। साधक जिस समय ब्राह्मीस्थिति प्राप्त करेगा, उस समय परब्रह्म परमात्माके सभी गुण उसमें दिखाई देंगे, यही इसकी परमपद प्राप्ति है। इस विचारको अध्यात्म विचार कहते हैं।

२ एक मनुष्य ऐसा परमपद प्राप्तिका साधन करे और अन्य मनुष्य वैसे ही कोरे रहें, गुण्ड रहें तो वे उसके मार्गमें विघ्न करेंगे और उसको शान्ति नहीं मिलने देंगे। इसालिये यह साधन मार्ग जातिशः, संघशः, राष्ट्रशः आचरणमें आना चाहिये। कोई कार्य जातिशः आचरणमें आने लगा, तो उसमें वे संस्कार जाती-पर पडते हैं और सबकी सब जाती अथवा सबका सब राष्ट्र वैसा अनुशासन युक्त बनता जाता है, पर इसालिये राज्यशासनकी बागडोर इस तरहके आत्मानुभवी

मानवोंके आधीन रहनी चाहिये। **राजा और राजपुरुष अर्थात् राज्याधिकारी परमात्माके गुणधर्म अपनेमें धारण करनेवाले होने चाहिये;** ऐसे लोग राज्य करेंगे तो वह राष्ट्रका राष्ट्र ही उन्नत होता जायगा। इसलिये "**परमात्माके गुण आदर्श राजाके गुण हैं तथा आदर्श राज्याधिकारियोंके भी गुण हैं।**" परमात्मा विश्वका महाराजा है और राजा छोटे राष्ट्रका राजा है। महाराजाका आदर्श छोटे राजाके सामने रहना चाहिये। छोटा राजा विश्वके महाराजाके समान अपना राज्य करे। इसलिये वेही परमात्माके गुण राजाके लिये अपने सामने आदर्श करके रखे जाने योग्य हैं। इस विचारको अधिभूत विचार कहते हैं।

परमात्माके गुणकर्मोंका वर्णन इस तरह राजाका आदर्श वर्णन होता है और आदर्श मानवका भी वही वर्णन होता है। इसलिये हमें परमात्माका वर्णन व्यक्तिमें तथा राजाके आचरणमें घटाकर देखना चाहिये। इस तरह विचार करनेपर '**परमात्माके गुणोंके वर्णनसे हमें पता लग जायगा कि राजा और राजपुरुष कैसे हों, उनका राज्यशासन कैसा हो।**' यही विचार अब हम यहां संक्षेपसे करते हैं।

स्वर्गका वर्णन

इसी तरह स्वर्गका वर्णन भी आदर्श राज्यका वर्णन है। भूमिपर स्वर्गधाम लाना है। अतः स्वर्गका वर्णन साधक अपने सामने रखे और अपनी शासन व्यवस्था ऐसी बनावे कि वह स्वर्गका वर्णन इस भूमिपर भी दिखाई देता रहे जैसा देखिये—

१ स्वर्गे लोके किंचन भयं नास्ति (१।१।१२)=स्वर्गलोकमें भय नहीं होता। वैसा ही उत्तम राज्यशासनव्यवस्थामें मनुष्योंको निर्भयता प्राप्त होनी चाहिये। निर्भयतासे मनुष्य सर्वत्र संचार करते जांय, पीछेसे आकर कोई दुष्ट पीठमें शस्त्र न भोंके, लूट मार न हो, डाका न पडे, मारपीट न हो। स्त्रीपुरुष सुखसे निर्भयतासे सर्वत्र संचार कर सकें।

२ स्वर्गे लोके मृत्युः नास्ति (१।१।१२)= स्वर्गलोकमें अकालमृत्यु नहीं होता। अपनी राज्यव्यवस्थामें भी अकालमृत्यु न हो, राज्यव्यवस्थासे जनताका आरोग्य बढे, रोग दूर हों, सांसर्गिक व्याधियां न बढें, रोग दूर करनेके उपाय सबको प्राप्त हों और अपमृत्युको दूर किया जाय।

३ स्वर्गे लोके जरया न बिभेति (१।१।१२) स्वर्गलोकमें जरा नहीं है। वहांके सब लोग वृद्ध आयुमें भी तरुण जैसे हृष्टपुष्ट होते हैं। पृथ्वीपरके राज्यमें भी वृद्ध आयुमें मनुष्य तरुण रहें ऐसा सुयोग्य प्रबंध होना चाहिये। खानपानका सुप्रबंध हुआ, रोग दूर रहे, मानसिक शान्ति रही तो वृद्धावस्थामें भी तारुण्य अनुभवमें आजायगा।

४ अशनायापिपासे स्वर्ग लोके तीर्त्वा (१।१।१२)= स्वर्गलोकमें-खानेके लिये योग्य अन्न मिलता है और पीनेके लिये योग्य रसपान मिलता है। जितना चाहिये उतना खानपान रहनेसे वहांके रहनेवाले सदा हृष्टपुष्ट रहते हैं। ऐसा खानपानका प्रबंध पृथ्वीपर अपने राज्यमें राजा करे। और सब प्रजाका उत्तम पोषण होता रहे।

५ शोकातिगः स्वर्गलोके मोदते (१।१।१२)= स्वर्गलोकमें शोक, दुःख नहीं होता है और सब लोग आनंद प्रसन्न रहते हैं।

यह स्वर्गका आदर्श है। राजा और राजपुरुष यह आदर्श अपने सामने रखें और अपने राज्यमें जहांतक यत्न हो सकता है उतना प्रयत्न करके ये स्वर्गके सुख अपने राज्यकी जनताको मिले ऐसा यत्न करे। पृथ्वीपर स्वर्गसुख प्राप्त हो सकता है। पर ये आदर्श अपने सामने मनुष्य रखे और वैसा प्रबंध यहां करता जाय। समाजकी उन्नति होते होते कभी न कभी यहां स्वर्गके सब सुखोंका अनुभव आ जायगा।

६ कामस्य आप्तिः (१।२।११)= कामनाओंकी प्राप्ति होती रहे। मनुष्यको इच्छाही न हो, पर न्यूनता होनेपर इच्छा होगी। वह इच्छा होनेपर उसकी तृप्ति होनेके साधन तैयार रहें। जैसा जलकी आवश्यकता होनेपर उत्तम आरोग्यवर्धक जल मिले। मनुष्य कामनाओंको न बढावे, पर आवश्यक कामना तो होगी ही, वह पूर्ण होनेके साधन राष्ट्रमें रहें।

७ **जगतः प्रतिष्ठा** (१।२।११)= जगत् जैसा सुप्रतिष्ठित है वैसा ही राष्ट्र, तथा मानवोंके व्यवहार सुप्रतिष्ठित होने चाहिये।

८ **अभयस्य पारं** (१।२।११)= निर्भयताका पैल किनारा मनुष्योंको प्राप्त हो। परमेश्वर पूर्ण निर्भयताका स्थान है वैसा ही राजा, राज्यव्यवस्था और राज पुरुषोंके व्यवहारसे राज्यमें पूर्ण निर्भयताकी स्थापना हो। राजमें गुण्डापन कोई न कर सके ऐसा सुयोग्य प्रबंध रहे।

राजाका आदर्श परमात्मा है।

परमात्मा विश्वका महाराजा है, उसका विश्वपरका शासन निर्दोष हो रहा है। यह शासन कैसा चलरहा है, यह परमात्माके वर्णनमें पाठक देख सकते हैं। यह आदर्शशासन है। मनुष्य यह जानकर अपना पृथ्वीपरका राज्यशासन वैसा करनेका यत्न करे। यहां यह संक्षेपसे बताते हैं—

१ **अक्षरं परं आलम्बनं** (१।२।१६)= परमेश्वर सबके लिये अविनाशी श्रेष्ठ आश्रय है, इसी तरह सब जनताके लिये राज्यशासन अथवा राजाका आधार होना चाहिये। राजाके आश्रयसे सब लोग अपने अपने उत्कर्षके सब व्यवहार निर्विघ्न रीतिसे कर सकें। कोई किसीके उत्कर्षके व्यवहारमें बाधा न डाले।

२ **अनवस्थेषु अवस्थितं** (१।२।२२)= परमेश्वर निराधारोंमें रहता है और उनको आधार देता है, अनवस्थितोंमें भी रहकर उनको आश्रय देता है। इसी तरह राजा निराश्रितोंको आश्रय देवे और उनको निराधार न छोडे।

३ **शुक्रं अमृतं ब्रह्म** (२।२।८)= परमेश्वर बलवान्, पवित्र, अमर और महान् है। राजा भी बलवान्, पवित्र, और महान् हो। पवित्र रहे, निर्दोष आचरण करता रहे।

४ **गूढं, अनुप्रविष्टं, गुहाहितं, गव्हरेष्ठं देवं** (१।२।१२)= परमेश्वर गूढ है, सर्वत्र प्रविष्ट है, गुहामें रहता है, प्रकाशमान है। राजा भी गुप्त रहे, सुसंरक्षित रहे, सभामें प्रवेश करे, कीलेमें रहे, सुराक्षित स्थानमें रहे और प्रकाशमान तेजस्वी हो। '**गूढ**' का भाव यह भी होता है कि उसके विचार तथा नियोजन

गुप्त रहते हैं, सुरक्षित रहते हैं, उसके कार्य अतिगहन होते हैं।

५ **अजः नित्यः शाश्वतः पुराणः** (१।२।१८)= ईश्वर अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुराण पुरुष है। राजा भी (अजति इति अजः) गतिमान हो, प्रगतिमान हो, नित्य शाश्वत फल देनेवाले उत्तम कार्य करे और (पुरा अपि नवः) पूर्व कालका तथा नवीन समयका मिलाप करता जाय । प्राचीन पद्धतिको तथा नये सुधारको अपनाता जाय। प्राचीन होता हुआ नवीन भी रहे।

६ **महान्तं विभुं आत्मानं** (१।२।२२)= ईश्वर सर्वव्यापक, महान आत्मा है। राजा भी अपने राज्यमें सर्वत्र जाय, सबकी देख भाल करे, शासन रूपसे सर्वत्र समानरूपसे रहे और महान् हो । अल्पात्मा न हो।

७ **नित्यानां नित्यः, चेतनानां चेतनः, बहूनां एकः कामान् विदधाति** (२।२।१३)= ईश्वर नित्योंमें नित्य, चेतनोंमें चेतन और बहुतोंका एक आधार है। राजा भी नित्य कार्य करनेवालोंका नित्य सहायक, उत्साहवालों को भी विशेष उत्साह देनेवाला और अनेकोंका अद्वितीय सहायक हो। इस तरह वह सब राष्ट्रकी उन्नति करे। सब कार्य कर्ताओंको सफल बनावे।

८ **तस्य भासा सर्वं इदं विभाति** (२।२।१५)= ईश्वरके तेजसे यह सब प्रकाशित होता है। राजाकी अथवा राज्यशासनकी तेजस्वितासे सब राष्ट्र तेजस्वी बने। राजा ऐसा प्रबंध करे कि सब राष्ट्रके पुरुषोंका प्रकाश चारों ओर फैलता जाय।

९ **तस्मिन् लोकाः श्रिताः सर्वे** (२।३।१)= उसके आश्रयसे सब लोक रहते हैं। राष्ट्रमें राज्यशासनके आश्रयसे सब जनोंका व्यवहार चलता रहे। राज्यशासनके आश्रयसे सबका व्यवहार बढता जाय।

१० **तत् उ नात्येति कश्चन** (२।३।१)= उसकी आज्ञाका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। यहां राजाके शासनका भी कोई उल्लंघन न कर सके ऐसा सुयोग्य प्रबंध राष्ट्रमें रहे, राज्यशासन ढीला न हो । सब शासनप्रबंध सुयोग्य हो, सुदृढ हो।

११ **भयादस्याग्निः तपति भयात्तपति सूर्यः** (२।३।३)= इस ईश्वरके भयसे अग्नि सूर्य आदि तपते तथा अन्य देव अपने कार्यमें तत्पर रहते हैं। इसी

तरह राजाके सुप्रबंधके भयसे सब अधिकारी अपना अपना कार्य करते रहें। किसीमें ढीलापन न आजाय।

१२ सर्वे तस्मिन् श्रिताः तं देवाः सर्वे अर्पिताः (२।२।८)= उस परमात्माके आश्रयसे सब देव रहते हैं। इसी तरह राजाके आश्रयसे सब अधिकारी कार्य करते हैं। राजाकी शक्ति लेकर ही सब राज्याधिकारी अपना कार्य करनेमें समर्थ होते हैं।

१३ भूतस्य भव्यस्य ईशानं (२।१।५; २।१।१३)= भूतकालमें जो था, भविष्यमें जो होगा, वर्तमानमें जो है उस सबका स्वामी ईश्वर है। राजा भी राष्ट्रके भूत भविष्यका स्वामी है।

१४ इह नाना नास्ति (२।१।१०-११)= यहां नाना परमेश्वर नहीं हैं, नाना प्रभु नहीं है। राष्ट्रमें एक ही राजा हो, एक राष्ट्रमें नाना प्रकारके सर्व सत्ताधारी हुए तो अनर्थ होगा। राष्ट्रमें सर्वोपरि एक ही शासन हो।

१५ आसीनो दूरं व्रजति, शयानो याति सर्वतः (१।१।२१)= यह आत्मा बैठा हुआ दूर जाता है, सोता हुआ भी सर्वत्र पहुंचता है। राजा भी एक स्थानपर बैठकर सब राष्ट्रके व्यवहार दूतोंके द्वारा देखता और सोता हुआ भी सर्वत्र गमन करनेके समान देखता है। राजाको अज्ञात कुछ भी न हो।

१६ अणोः अणीयान्, महतो महीयान् (१।१।२०)= यह आत्मा छोटेसे छोटा और बडेसे बडा है। राजा भी छोटे सज्जनसे विनम्र हो और बडे गुण्डेसे बडा सामर्थ्यवान् रहे। सर्वत्र दक्ष रहे।

१७ आत्मानं रथिनं, शरीरं रथमेव, बुद्धिं सारथिं, मनः प्रग्रहमेव च, इंद्रियाणि हयान्याहुः (१।३।३-९)= आत्मा रथी, शरीर रथ है, बुद्धि सारथी, मन लगाम है, इंद्रियाँ घोडे हैं। राष्ट्रमें राजा रथी है, सब राष्ट्र रथ है, सब अधिकारी घोडे हैं. प्रतिनिधि सभा लगाम है और मंत्री मंडल सारथी है। इस तरह यह रथ उन्नति पथपर चलता है।

घोडे, तथा सारथी स्वाधीन होनेपर प्रवास सुखकर होता है और अशिक्षित होनेपर दुःखकारक होता है। ऐसा ही राष्ट्रमें भी देखना योग्य है। राष्ट्रके अधि-

कारी सुशिक्षित, प्रतिभासंपन्न तथा ज्ञानविज्ञान युक्त हों तो वे राष्ट्रका शासन निर्दोष पद्धतिसे कर सकते हैं। अन्यथा वे ही रिश्वतखोर हुए तो राज्यशासन ठीक तरह नहीं होगा। रथकी उपमासे यह सब जानने योग्य है।

१८ एकः वशी सर्व भूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति (२।२।१२)= एक सबको वशमें रखनेवाला अपने एक रूपको अनेकोंमें अनेक रूपवाला बनाता है। इसी तरह एक राजा अपनी एक शक्तिको अनेक अधिकारियोंमें अनेक प्रकार विभक्त कर देता है। और उनसे नाना प्रकारके कार्य कराता है। सब अधिकारी जानें कि हमारे अन्दर राजशक्ति कार्य कर रही है, उसके विना हम असमर्थ हैं। ऐसा मानकर वे सब राजशक्तिकी पवित्रता रखें।

१९ इंद्रिय-मन-बुद्धि-पुरुष ये पहिलेसे दूसरा श्रेष्ठ है। यह जानकर श्रेष्ठके द्वारा अश्रेष्ठका संयम किया जाय। इसी तरह अधिकारी, मंत्री, प्रतिनिधिसभा, राजा ये एकपर एक श्रेष्ठ हैं। ऊपरका ऐसा व्यवहार करे कि उससे नीचेवाला संयममें रहे और अपने कार्य योग्यरीतिसे करता जाय। उद्दण्ड कोई न हो (१।३।१०-११; २।३।७-८)

२० सुप्तेषु जागर्ति (२।२।८)= सोये हुओंमें यह आत्मा जागता है। राजा भी अन्य अधिकारी सोये तो भी जागता रहे और सबका निरीक्षण करे। राष्ट्रमें प्रबंध ऐसा करे कि कोई सोता न रहे, कोई ढीला न रहे, सब अपने अपने कर्म यथायोग्य करनेमें तत्पर रहें।

२१ यथाकर्म यथाश्रुतं अन्ये अनुसंयन्ति, अन्ये प्रपद्यन्ते (२।२।७)= जैसा जिसका कर्म और जैसा जिसका ज्ञान होगा वैसी उसकी उन्नति या अवनति होगी। जिसकी जैसी योग्यता है वैसी उसको स्थिति प्राप्त होगी। सबकी यथास्थान नियुक्ति उनकी योग्यतानुसार हो।

२२ एकादशद्वारं पुरं अजस्य अवक्रचेतसः (२।२।१)= इस आत्माकी यह शरीररूपी नगरी ग्यारह द्वारवाली है। इस राजाकी नगरीके बाहेर सुदृढ कीलेकी दीवार हो। इस किलेके अन्दर सुरक्षित नगरी हो और इस दीवारमें ग्यारह द्वार हों। अथवा न्यून वा अधिक आवश्यकतानुसार हों। नगरी सदा सुरक्षित रहे, गुण्डोंका आक्रमण न हो सके।

२३ **उत्तिष्ठत जाग्रत ? प्राप्य वरान् निबोधत** (१।३।१४)= उठो जागो और श्रेष्ठोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञानसे ही उत्तम मार्ग दीख सकेगा।

२४ "**हंस शुचिषद्**" (२।२।२)= इस मंत्रकी व्याख्या राजकीय क्षेत्रकी इससे पूर्व (८५-९०) दी है। पाठक वह वहां देखें।

यहां संक्षेपसे बडे विश्वके महाराजाका—परमात्माका वर्णन पृथ्वीपरके राजाके लिये किस तरह मार्गदर्शन कर सकता है यह दर्शाया है। विद्वान पाठक इस तरह अन्य वर्णनका भी विचार करें और अन्य बोध जानें। परमात्माकी विशालता और अमोघवीर्यता सर्वोपरि है और राजाकी अल्पशक्तिमत्ता और परिमित वीर्यता है। इस कारण अर्थकी मर्यादामें आवश्यक न्यूनाधिकता करनी पडेगी। पर विश्वका महाराजा परमेश्वर पृथ्वीके राजाके लिये आदर्श शासक है यह मुख्य सूत्र है वह अबाधित ही रहेगा। केवल राजाके लिये ही प्रभुका आदर्श है ऐसा नहीं, परंतु अन्यान्य अधिकारियोंके लिये भी वही आदर्श है, सब मनुष्योंके लिये भी वही आदर्श हैं। इसीका नाम आत्मिक आधारपर होनेवाला राज्यशासन है।

इससे व्यक्तिमें शान्ति, राष्ट्रमें शान्ति और विश्वमें शान्ति होगी।

कठोपनिषद्

विषय-सूची

२३ **उत्तिष्ठत जाग्रत ? प्राप्य वरान् निबोधत** (१।३।१४)= उठो जागो और श्रेष्ठोंके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करो । ज्ञानसे ही उत्तम मार्ग दीख सकेगा ।

२४ **" हंस शुचिषद् "** (२।२।२)= इस मंत्रकी व्याख्या राजकीय क्षेत्रकी इससे पूर्व (८५-९०) दी है । पाठक वह वहां देखें ।

यहां संक्षेपसे बडे विश्वके महाराजाका—परमात्माका वर्णन पृथ्वीपरके राजाके लिये किस तरह मार्गदर्शन कर सकता है यह दर्शाया है । विद्वान पाठक इस तरह अन्य वर्णनका भी विचार करें और अन्य बोध जानें । परमात्माकी विशालता और अमोघवीर्यता सर्वोपरि है और राजाकी अल्पशक्तिमत्ता और परिमित वीर्यता है । इस कारण अर्थकी मर्यादामें आवश्यक न्यूनाधिकता करनी पडेगी । पर विश्वका महाराजा परमेश्वर पृथ्वीके राजाके लिये आदर्श शासक है यह मुख्य सूत्र है वह अबाधित ही रहेगा । केवल राजाके लिये ही प्रभुका आदर्श है ऐसा नहीं, परंतु अन्यान्य अधिकारियोंके लिये भी वही आदर्श है, सब मनुष्योंके लिये भी वही आदर्श हैं । इसीका नाम आत्मिक आधारपर होनेवाला राज्यशासन है ।

इससे व्यक्तिमें शान्ति, राष्ट्रमें शान्ति और विश्वमें शान्ति होगी ।

कठोपनिषद्

विषय-सूची

कठोपनिषद्के मन्त्रोंकी
वर्णानुक्रमाणिका

मन्त्र-सूची

भारत-मुद्रणालय, 'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी (जि. सूरत)